VAIRAG SHATAK

42

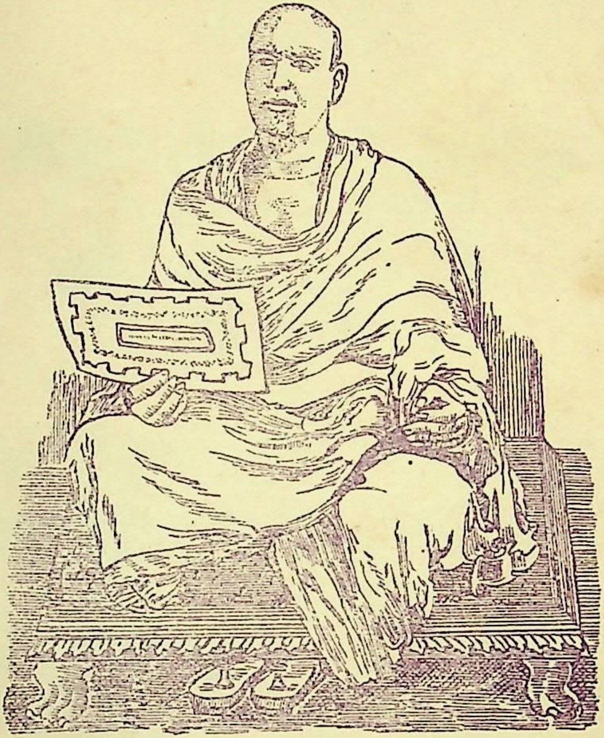
श्रीभर्तृहरिकृतं
वैराग्यशतकम् ।

कविवरहरिदयालकृत—पद्यात्मक
भाषया सहितम् ।

सुमेरुपुरनिवासि-रघुवंशशर्मशास्त्रिणा
विषमस्थलटिप्पण्यादिना सुसंस्कृतं

प्रकाशकः—
हरीप्रसाद भागीरथजी, बम्बई
के सोल ऐजेन्ट—
रघुनाथदास पुरुषोत्तमदास अग्रवाल,
चूना कंकड़, मथुरा ।

सन् १९३६ ई०



श्रीगुरुनानकवंशोत्पन्नश्रीमद्गुरुपतिपदपरिभाषितशिष्य

श्रीमत्संङ्गतिदासाख्याः ।

ॐ

श्रीगणेशायनमः ।

अथ

श्रीभर्तृहरिकृतं वैराग्यशतकम् ।

कविवरहरिदयालकृतपद्यात्मक-
भाषानुवादसहितम् ।

दोहा ।

[1]दुरदवदन दुरजनदलन, मदनकदन शिवनंद ।
एकरदन सुखसदनके, पादपद्मप्रति वंद ॥ १ ॥

सवैया ।

जिहिंशेषकीसेजपैशैनकियो, पदकोमलकोमलतीकमलाहीं[2]।
कर में दर[3] चक्र सरोज गदा, भृगुपादरेख स्रक[4] अंगद[5] बाँहीं॥
जिहिंपादकोवारि[6]सुचारु[7] विचारधरयोत्रिपुरारिसदाशिरमाहीं
असरूपजिसेउरभीतरहैभव[8]भीतिरहैकछुताउर[9]नाहीं२

---

१ हाथीकासा है मुख जिनका । २ लक्ष्मी । ३ शंख । ४ माला । ५ बजुल्ला । ६ गंगाजल । ७ उत्तम । ८ जन्ममरणरूप संसार का भय । ९ उसके हृदय में ।

अथ दो श्लोको करके मूलमंगलाचरण करते हैं।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नाऽनन्तचिन्मात्रमूर्तये
स्वानुभूत्येकमानायमनः शांतायतेजसे १
चूडोत्तंसितचारुचंद्रकलिकाचञ्चच्छिखा-
भास्वरो लीलादग्धविलोलकामशलभः॥
श्रेयोदशाग्रे स्फुरन्। अन्तःस्फूर्जदपार-
मोहतिमिरप्राग्भारमुच्चाटयन् चेतः सद्-
मनि योगिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः२

दोहा।

शांत प्रकाशस्वरूप प्रति नमो सर्वदा[१] होय।
सृष्टि स्थिति लय क्षोभबिन,रविशशिभासक सोय।३।
दिक्कालादि प्रच्छेद[२] बिन, [३]चिदानंतवपु जोय॥

---

१ सदैव। २ सर्वत्र व्यापक हाने से जिसमें देशकृत परिच्छेद नहीं है, तीनों कालों में वर्तमान होने के कारण जिसमें कालकृत परिच्छेद नहीं है तथा सर्वरूप होने के कारण जिसमें वस्तुकृत परिच्छेद भी नहीं है। इस प्रकार त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्व कहने से सजातीय, विजातीय तथा स्वगत भेदशून्यत्वभी सूचित होता है। ३ चैतन्य और अनन्तस्वरूप।

[1]स्वानुभवैकप्रमाण तिहिं, नमो काव्य इति होय।४।

अथ शिवोपमातोटक छंद।

हर ज्ञानप्रदीप सदा लसके। मनमंदिर योगिनके वसके
बहुमोहउदै जुहदै तिनको। [2]तमपुंजवहीतिहिंकोहनके५
पुनिलोल[3]अनंगपतंगमहा। क्षणमाहिंस्वभावकताहिंदहा
निहकामसमूहगुणाग्रदिपै। सुसनेहसनेहवहीअरिपै६
जिनकेअतिभालकिभागभले। असदीपकतामनधाम जले
जिहिंभूषणभालभयंकसही। कलिका[4]कलदूजकलंकनहीं
[5]बिवतासुशिखासुप्रकाशसमं। दिनरातिविभातिप्रशांततम्
पुनितीनगुणोंयुतदेवत्रये। दृगतीनकिनैनमिएनकये८
सतसंगवसे[6]हरिनेत्रसजे। सरजो[7]अजलोचनदूजसजे
अगनाक्षविषैनिजहैसतमो। [8]भवपालग्रसेअसइशनमो

दोहा।

भरतशतक वैराग को, भाषकार हरिद्याल।
केवल प्रेमहुलास उर, [9]लव-न कविनकी चाल१०
अरथ वर[10] न वृत[11] न युत, [12]भूपवचन शिवऊप।

१ स्वयंप्रकाशरूप। २ अन्धकार का समूह। ३ काम। ४ सुन्दर। ५ दो। ६ विष्णु। ७ ब्रह्मा। ८ संसार। ९ लाहोरनिवासी कवियों की अथवा लेश-मात्र नहीं है। १० अच्छा। ११ छन्द। १२ राजाभर्तृहरि का वचन।

बालव्याहकी गालिसम, दूषण भूषणरूप ॥११॥

कवित्त ।

सोम नाम विप्रवर गिरिजाके वर[१] कर[२],
लीनो सुधाफल[३] कर दीनो नरनाहिके ।
भूपति स्वपतनीको रानी निज मीतहीको,
ताने दीनो गीतकीको नीको फल चाहिके ॥
आगे गणिका सरागे धरापति आगे धरा,
नरनाथ माथ धुना सुन धुना ताहिके ।
हा हा कामिनीके हित हते काम नीके अब,
ताहि तजों ताहि भजों शीश शशि[४] जाहिके॥१२

श्लोकः ।

यां चिन्तयाम्यनुदिनं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति नरं स नरोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मांच।३

सवैया ।

जिनकोनितमैंचित[५]मोचितमोतिन कीरति[६]मोतनमाहिंरतीना[७]।

१ बरदानसे । २ हाथमें । ३ अमृतफल । ४ चन्द्रमा । ५ देखता हूं ।
६ प्रीति ७ रत्तीभर भी ।

बहुआनपुमानकिसंगरतीपुनितामनमैंगणिकागहकीना
धिकहैअबला[1]भृत[2]कंदर्[3]पैअरुमोंहिंधिकारजुमार[4]अधीना।
इतिरीतिसमूहकिप्रीतितजीनृपहोययुगीश्वरईश्वरचीना

दोहा।

भन्यो भूप वैराग्यशत, निजमन शिक्षा हेतु।
सुनोजनो शुभगिरा तिहिं,जगतजल[5]धिमहिसेतु१४

सोरठा।

अति नदवत गंभीर, श्रीहरिभर्तृविरागशत।
जन्म मरणभय नीर,विकसित[6] कमल श्लोकगण[7]१५

कवित्त।

दोष[8]दृष्टि नाल गुरु दल पद लघुपर,
अंकमात्रा तरीतर अरथ सुवास है
डाटे काँटे मंद संग इंदु हेर निसपंद,
अरक विवेकके प्रकाशते विकास है॥

---

१ रानी और वेश्या। २ नौकर। ३ कामदेव। ४ कामके वश में। ५ संसाररूप सागर में सेतु (पुल) रूप। ६ फूले हुए। ७ समूह। ८ संसार के समस्त विषयोंको दोषदृष्टि से देखना यही श्लोकात्मक वाक्यरूप कमलों की नाल है। पदही गुरुदल अर्थात् बड़े बड़े भीतरी पत्ते हैं। पदों के अक्षर बाहरी छोटे छोटे पत्तों के समान हैं। अक्षरों की मात्रा तरी अर्थात् तलभागके-

भोगी भूँड भोग मल भोगत न तजें पल,
संतनको मन अली सेवे सदा तास है।
ऐसो नर आँखों सों विलोकों नाहिं जाहिं आँखों,
भाखों निजमनहीको वाक्य भवनास है॥१६॥

दोहा।

[१]श्रुतिवक्ता भुक्ता[२] अवनि, बहुरि इतर[३] बहु लोक।
तिनहिं विलोक न सकहिं तिन, सुभग सरोजश्लोक॥
तिनके अनअधिकारको, करके प्रगट बहार।
श्रीहरि भर्तृ स्वचित्तप्रति, भनत सुवचननिचोर॥१८॥

समान हैं। अर्थ ही सुवास है। अधिकारी को डाटना ही कांटे हैं। कुसङ्ग रूप चन्द्र को देखकर, ये कमल मलिन व निष्पन्द अर्थात् क्रिया रहित हो मुकुलित होजाते हैं और ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाश से विकसित होते हैं, भोगी (विषयी) रूप शूकर भोग (विषय) रूप मल [विष्टा] को पल भर त्यागते ही नहीं। अतएव वे उक्त कमलों के निकट नहीं आते। किन्तु सज्जनों का मनरूप भ्रमर सदा इनकी सेवा करता है, सो ऐसा मनुष्य संसार में मैं नहीं देखता, जिसके आंखें हों, अर्थात् सभी मनुष्य प्रायः विषयांध हो रहे हैं। अतएव उनको ये मेरे वाक्यरूप कमल दीखते ही नहीं। इसकारण, मैं और किसीसे न कहकर, अपने मनहीसे संसार के नाशक वाक्य कहता हूँ। (कविवर हरदयालजीने यह "बोद्धा०" इस श्लोककी अवतरणिका लिखी है)

१ वेदवक्ता (पण्डितजन) २ पृथ्वी के भोक्ता राजालोग। ३ साधारणजन

श्लोकः।

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताःप्रभवःस्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम्

कवित्त।

ग्रंथनके ज्ञाते माते मतसर कीचबीच,
धरानाथ मदसाथ भरे दरसात हैं।
दूषण चमोरें मोरें भूषण सुभाषणको,
पंडित भूपाल तो न सुनें मेरी बात हैं॥
पुना आन जंतु जेते दुखी मूढ दीन ते ते,
मोते सकुचात हम ओते सकुचात हैं।
[2]पात्रबिना भाखे [3]राखे हवनको राखे तैसे,
जीरण मो गातमो सो बात होत जात है॥ १९॥

सोरठा।

वक्ता है नृप आप, श्रोता निजमन को कियो॥
रुद्र[4] श्लोक अलाप, कियो अचल निहताप चित२०

श्लोकः।

भ्रान्त्वा देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चित

---

१ प्राणी। २ योग्य अधिकारी। ३ भस्म। गेरह ४।

फलं त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं
सेवा कृता निष्फला। भुक्तं मानविवर्जितं
परगृहे साशंकया काकवत् तृष्णे जृम्भसि
पापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि ॥८॥

कवित्त।

दुरगम[1] विषम[2] अशेष[3] दश भ्रमकर,
लह्यों मैं कलेश गह्यों लेश नाहिं धनको।
जातिकुलका ऽभिमान उचित विहाय[4] ताहि,
सेवा कीनी फलहीनी शोच भयो मनको।
काक यों सशंक मानबिन परधाम खायो;
अजे[5] रजे[6] न सप्रीत भजे दुरितनको[7]।
ब्रह्मतें बिछोर नीच तृष्णा कीनो ढोर अब,
होर जो नचात कहा होर करे जनको॥ २१ ॥

श्लोकः।

खलालापाःसोढाःकथमपि तदाराधनपरै-

१ जाने को अयोग्य। २ कठिन। ३ समस्त। ४ छोड़के। ५ ब्रह्म में ६ प्रेम न किया। ७ पापकर्मों वा पापी पुरुषों को।

निगृह्यान्तर्बाष्पंहसितमपिशून्येन मनसा।
कृतश्चित्तस्तम्भः प्रतिहतधियामंजलिरपि
त्वमाशेमोघाशेकिमपरमतोनर्तयसि माम्

पुनः वही कवित्त।

आशे फलहीनी कीनी तेरे बलसों सेवादि,
मूढ़ोंके कुबैन [1]सोढे नैन छोड़े [2]बनको।
चित्तको संकोच कीनो [3]कं [4]दृगसों रेक लीनो,
भावी शोक चीनो पीनो कीनो न बचन को।
हँस्यों भी निकार दंत जैसे चिन्तामान जंत,
जोरकर कर करी बन्दना नीचन को।
तैसे [5]नमो करों तुम्हें तेरे संग चिर भ्रमें,
अब चाहे छोर हमें काहे दाहे [6]जनको ॥ ३२ ॥

श्लोकः

उत्खातंनिधिशंकयाक्षितितलंध्मातागिरे-
र्धातवो निस्तीर्णः सरितां पतिनृपतयो य-

---

१ सहन किये, २ अश्रुजल को, ३ अश्रुजल को, ४ नेत्रों से, ५ नमस्कार, ६ सेवक (मुझ) को।

त्नेन संतोषिताः।मन्त्राराधनतत्परेणमनसा नीताःस्मशाने निशाःप्राप्तःकाणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्च माम् ७

तोटक छन्द ।

अब तो तज तू हमको त्रिषने । तवलाभविषेममखेद घने
तुमकीन मुझे मनवासजवे। धनशंक उठीउरमोरतबे ॥
सभको वित[1] है सभभूमितले।हम खोद थके परयंतजले
[2]गिरिधातुकृशा[3]नुप्रतापदही।अबलाभरसहायनहोयसही
हमसिंधुतरेमुक्तादिसुने।मुकतादिकहांशुकत्यादिलने
[4]बहुभूपनकोयतनोंकरके । अतिकीनप्रसन्नलजाहरके॥
करचित्त इकाग्रकुमंत्र जपे।शमशाननमें निशिपुंज[5]खपे
करिहोंजबमैं वशभूतनको । परकीहर देहिं विभूतिनको
इमिआयुवृथाममहंत[6]सभी मुहिंकाण[7]वराटकभीन लभी
कतकाजनिलाजअकाजदहो।तजमोहिंकहूंअबआनगहो

१ धन । २ पारा आदि । ३ अग्नि के प्रताप से । ४ राजाओं को ।
५ रात्रियों के समूह । ६ खेद है अथवा नष्ट हुई । ७ फूटी कौड़ी ।

सोरठा।

क्यों ब्रह्मते जीव, चाहे अब चाहे कहा।
किधौं करे निरजीव, आशे तब आशय कवन ॥२८॥

परिभ्रमसि किंवृथाक्कचनचित्त विश्राम्यतां
स्वयंभवति यद्यथाभवतितत्तथानान्यथा।
अतीतमपि न स्मरन्नपिचभाविसंकल्पयन्
अतर्कितगमागमाननुभवस्वभोगानिह॥८

सवैया।

शांति निजांतर[1] किं न[2] गहे कत डोले वृथा भवमो[3] सघना
होय यथासु तथा निज है तुमते अन्यथा[4] बहुहोवतना॥
प्रीति न साथवितीत भलीकछुहाथमिलीनयथास्वपना।
मौन[5] गहो अब मौनगहोतुम मोरगिरा जिन मोरमना॥
भावि[6]कभाव अभाव[7]यथा न रमोतिनमो न भके[8]सुम[9]ना॥
मध्यकिभोग कि मध्य रमो गत राग भ्रमो अनउत्तरना॥
ब्रह्म नपुंसक यों मन तू बिनती तव दंपतिमो सुख ना।
टेरत मैं प्रति फेर तुमै तुम भोमतको मतफेर मना॥३०॥

१ अपने अन्तःकरणमें। २ क्यों नहीं। ३ सँसारमें। ४ और प्रकार का नहीं हो सकता। ५ मौन। ६ भावी के पदार्थ। ७ अभाव के समान हैं। ८ आकाश के। ९ फूल।

श्लोकः।

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा
प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदयक्लेशकलिलम्
प्रसन्नेत्वय्यन्तःस्वयमुदितचिन्तामणिगुणे
विविक्तःसंकल्पःकिमभिलषितंपुष्यतिनते

पुनः कवित्त।

चित्त रे तू बित्तके निमित्त दिनरात नित्य,
सेवत परोंके चित्त एही दुःख अति रे।
तिनोंकी जो मुद तासों उदित कलेशों कर,
मत मान करे हत ताको [1]ताको मत रे॥
निजचिंता तज सोवे [2]स्वांतर प्रसन्न होवे,
चिंतामणिगुण जोवे देहमें महत्त्व रे।
ताते अभिलषित[3] न तेरो किधों सिद्ध[4] होय,
सुधा[5]पान करेते न किधों [6]व्याधि हत रे॥ ३१॥

दोहा।

तनमो तनक निवास तब, चिंतामणि तज ताहिं।

---

१ देखो. २ अपने अन्तःकरण में. ३ मनोरथ. ४ पूर्ण. ५ अमृत का पान. ६ रोग.

बहिर कृपण[1]गृह पराभव[2], सहत [3]द्रविणहित काहि।३२

एतस्माद्विरमेन्द्रियार्थगहनादायासकादा-
श्रयात् श्रेयोमार्गमशेषदुःखशमनव्यापा-
रदक्षं क्षणात्। शान्तं भावमुपैहि संत्यज
निजां कल्लोललोलां गतिंमा भूयो भज भ
ङ्गुरां भवरतिं चेतःप्रसीदाऽधुना ॥१०॥

पुनः कवित्त।

इन्द्रियों के भोग सारे भारे रोग देनवारे,
ताको कीजे हेय[4] मत श्रेयपथ[5] तेज रे।
पाप[6]अद्रि नाशनको वज्र [7]पाकशासनको,
दाहे दोषधासनको मोक्षशिखी[8] सज रे॥
हूजो शांत भावबीच प्रापत कदापि नीच,
आपनी कलोल लोल[9]गतिते न लज रे।
[10]क्षणभंग भव[11]राग ताको मन करो त्याग,
मोक्षको वैराग्य सह[12]कारी तास भज रे॥ ३३ ॥

---

१ सूम के घर में. २ अनादर. ३ धन के लिये. ४ त्याग. ५ कल्याणमार्ग. ६ पापरूप पहाड़ों का नाश करने को. ७ इन्द्रका. ८ मोक्षरूप अग्नि. ९ चञ्चल गति से. १० क्षणभर में नाश होने वाला. ११ संसारका विषय. १२ सहायक.

श्लोकः।

मोहं मार्जयतामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचूडा-
मणौ चेतः स्वर्गतरंगिणीतटभुवामासंग-
मंगीकुरु। कोवा वीचिषु बुद्बुदेषु च तडि-
ल्लेखासु च स्त्रीषु च ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु
च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः ॥ ११ ॥

पुनः कवित्त।

परिवार[1]के सनेहको निवार[2] देहि मन,
[3]बीची बुदबुदे रेखा दामनी समानिये।
पुना [4]दीपतागानिमै नागनमै नदीवेग,
माहिं जैसे सुख नाहिं तैसे ताहि जानिये॥
देव[5]नदीतीरकी पवित्र धरापर बैठ,
नीलकंठमाहिं नित उतकंठा ठानिये।
अब ऐसी रीति करो भोगनकी प्रीति हरो,
गुरुवेदवाक्य धरो तीन ताप हानिये॥ ३४॥

---

१ कुटुम्ब के. २ रोक. ३ जलके तरङ्ग (लहर). बबूला, रेखा व बिजली के समान. ४ जलती हुई अग्नि में. ५ गङ्गाजी के तटकी.

श्लोकः।

आक्रान्तं मरणेन जन्म जरयायात्युज्ज्वलं यौवनं संतोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढांगनाविभ्रमैः। लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपादुर्जनैरस्थैर्येणविभूतिरप्यपहता ग्रस्तं न किं केन वा॥ १२॥

पुनः चौपाई।

जन्म महावर ग्रस्यो मरण कर। [1]अघको जप ज्यों मृगको नाहर
पुनि निर्मल अति युवानुकूला। जरा[2] करताको निर्मूला
दुरित हरत ज्यों तुरत गंगजल। कलह गौन ज्यों करे मौन बल
पुनि धन चाहि ग्रस्यो संतोषा। यज्ञ बिपाक ग्रसे ज्यों रोषा
तरल तरुणतरु[3]णीके लोचन[4] ताहि विभ्र[5]महि सब सुख मोचन
ज्यों निर[6]वेद खेद भव हारो। पुना[7]सतो ज्यों रजतम टारे
ग्रसे गुणीके गुणको खल ज्यों। ब्रह्म विचार विकार ग्रसे ज्यों॥

---

१ पाप को. २ बुढ़ापा. ३ स्त्री के. ४ नेत्र. ५ कटाक्ष. ६ वैराग्य. ७ सत्वगुण।

ग्रास्योयोंदीतिकोउर[१]गादिकालजत्रासकोज्योंकामादिक
ग्रसित दुर्जनोंकर नृप ऐसे। मिले प्रश्नको उत्तर जैसे॥
सकल विभूतिअनस्थिरताने।ग्रसी [२]मनीषाज्योंचिंताने
इसप्रकार जनके[३]के नाहीं। ग्रस्त कालकर याभवमाहीं
अज[४]पिपीलिकालगजगजेतो। ग्रस्तसमस्तकालकरतेतो

दोहा।

सकल[४] भोग भवहेतु मन चपल सदोष सशोक।
ता तज भोगी जनों युत [५]गुरुश्रुतिपंथ विलोक॥४१॥

श्लोकः।

अग्रेगीतंसरसकवयःपार्श्वतो दाक्षिणात्याः
पृष्ठे लीलावलयरणितंचामरग्राहिणीनाम्।
यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लम्पटत्वं
नो चेच्चेतःप्रविशसहसानिर्विकल्पे समाधौ

१ सर्पादि क्रूरजन्तुओंने. २ बुद्धि. ३ कौन. ४ ब्रह्मा से लेके चींटीपर्यंत. ५ गुरुवेदमार्ग.

पुनः नाराच छन्द।

विचित्र राग रंग जे, स्वअग्रभाव में बने।
कविंद आसपासमें, रसाल वाक्य जे भने॥
[1]प्रबीन [2]चारु[3]कामिनी, [4]जिपृष्ठ भागमें लसें।
अलंकृती मनोहरी, मुखारविंदते हसें॥४२॥
करे गृहीत चामरं, विलाससों भ्रमावती।
तिने करे करे हलें, करें ध्वनी सुभावती॥
अरोग देह आयुषा, महा अशत्रु राज है।
जबै समीप आपने, लखे इतो समाज है॥४३॥
प्रपंच भोग स्वाद में, निशंक तो अबी रमो।
भवे तथा न तौ कहां, वृथा इतै उतै भ्रमो॥
[5]असंग विस्वते भवो अरण्य[6]वास लीजिये।
[7]असंप्रज्ञातमें मना, प्रवेश[8]शीघ्र कीजिये॥४४॥

श्लोकः।

पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनि प्रीतिं कुरु-
ष्वाऽधुनाभूशय्यानववल्कलैरकरणैरुत्तिष्ठ

---

१ चतुर। २ सुन्दर। ३ स्त्री। ४ पिछली ओर। ५ सङ्गरहित। ६ बनवास। ७ असंप्रज्ञातसमाधि में। ८ जल्दी।

यामो वनम्। क्षुद्राणामविवेकमूढमनसा
यत्रेश्वराणां सदा, चित्तव्याधिविवेकवि-
ह्वलगिरां नामापि न श्रूयते ॥ १४ ॥

पनः कवित्त।

भूमि सेज मूल फल मेध[१] नव बलकल,
करने न परें दैव आगे रच धरे हैं।
करो इने साय [२]रति प्यारी प्रेमवारी [३]मति,
उठो उठो तामैं अब जामैं बिब[४] ठरे हैं ॥
तुच्छ अविवेकी शठ मूढ मन बोल कटु,
जाके चित्त चिंता आग कर सदा जरे हैं ॥
ऐसे धनवाननके नाममात्र [५]कानन में।
जाहि माहिं काननमें कबूं नाहिं परे हैं ॥ ४५ ॥

दोहा।

शब्द खलों के नामके, परे न [६]कर्णमँझार।
ऐसे निर्जन[७] वनविषे, बसो बुद्धि बर वार ॥४६॥

---

१ वस्त्र. २ प्रीति. ३ बुद्धि. ४ दोनों. ५ वनमें. ६ कान में. ७ जनशून्य।

श्लोकः।

पातालमाविशसि यासि नभो विलंघ्य, दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानस चापलेन। भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मनीनं, तद्ब्रह्म न स्मरसि निर्वृतिमेषि येन॥ १९॥

पुनः सवैया।

शठ जाहि पताल कुशून्य कुलांघ किशूनो फिरे दिग मंडल धावत
बिन भाग्य मिले न धनादिसुखं तव चंचलता दुख हेतु जनावत।
ततब्रह्म निजातम शुद्धमना भ्रमसोपि कभी सुख हेतु न ध्यावत।
ततद्वंद्व[२]जवैभव[३]सिंधुतवैतवशांतिभयोबिनशान्तिन आवत॥४७॥

टीका—चौपाई।

मूढ करे पाताल प्रवेशा। देख्यो चाहें देश फणेशा॥
विष्णुसहस्रनामनवतनको। भाषेशेषपिखौंतातनको॥
फणसहस्रपर[४]मणिअवतंसाभासहितम[५]ध्वंसक समहंशा[६]
ल्यावों किंवें एक मणि हरके नाशैं सब कलेशतबघरके

---

१ भूलकर भी। २ सुख दुःख, पाप पुन्य आदि। संसार समुद्र।
३ मणियों के आभूषण। अन्धकार नाशक। ६ सूर्य के समाज।

तहँतेमूढशून्यमुडआवहि।पुनाकाशको लाँघ सिधावहि
सुरपतिलोकविलोकनकारण।सुधातडागकल्प[१]तरुवारण
सुर[२]भीनंदन[३]वनउपवनको।दरशोंसुरनसहितवाहनको
बैसपाकशासन सिंहासन।करे कवनविधि विबुधहिं शासन
किवें परेममतहँ परचोजब।निजगृहपठवों दिव्य भोगतब
इतरीतो उतरीतो आवहि।पुन दिगमंडलको उठ धावहि
दुर्गम विषमअदर्शी ठौरहि।द्रव्यनिमित्त निरंतरदौरहि
चित्तचपलताकरअह[४]निशिमें। भटकहिव्यर्थ कहाँदश दिशमें
तत निर्मल ब्रह्मातमरूपा। साक्षी शुद्ध असंग अनूपा॥
भ्रमकरभीकबहूँकहुँरीते। नहिंसुमरसिनिजब्रह्मअ[५]भीते
व्यष्टि समष्टि उपाधिभेदकर। जीवेश्वरकीद्विधाभिधापर
मायाऽविद्यामलमिल भासे। मु[६]ग्धोंके उरमाहिं प्रकाशे
तदपिसुविमललखेतिहँ निर्दुख। जाहि[७]लखेनश जाहिं निखिलदुख
जासुलाभकरलाभअपरना।जासुखकरसुखअवरनवरना

---

१ कल्पवृक्ष। २ कामधेनु। इन्द्रका बाग। ४ रातदिन। ५ निर्भय।
६ मूढ़ों के। ७देखने से।

एकवार है दर्शन जाको। देखन योग्य रहे पुनि नाको
जासु रूप है कर भवमाहीं।इतर रूप पुनि होवत नाहीं
जो सर्वैकसमान समाना।तो में भी सो रम्यो न आना
[1]त्वं न सर्वते अन्यत[2] जांते। वही रूप तवं निश्चय ताते
ब्रह्म सर्वमो पूरण जैसे सर्वविषे तुम पूरण तैसे
जाते श्रुति तब ब्रह्म बखाना ताते तब वपु याभवनाना
[3]भूतनकोहैपूतअभूतन जडपरिणामिनाशसमभूदजन
चेतनइकरसअव्यय[4]आतमताविनजड[5]संघातअनातम
सतो अंश भूतनकी जो है। ताते अंतकरण भयो है
रागद्वेषको घोष[6] सु जाते। सोपि रावरो[7] रूप न ताते
कार्यद्वारा जिहि अनुमाना।नातर सो प्रत्यक्ष अमाना
द्विवोपाधिको कारण जो है।कारण देह न आतम सोहै
तीनौपा[8]धिविहीनो जोऊ। रूप तुमारो निश्चय सोऊ
नहिं ततब्रह्मरूप ध्यावे। जाकर मूढ मुक्ति तू पावे

---

१ तू। २ भिन्न। ३ पञ्च तत्त्वों का पुतला है। ४ जिसका नाश नहीं होता। ५ समूह। ६ घर। ७ स्थूल, लिंग शरीर रूप उपाधिद्वय। ८ कारण लिंग और स्थूल।

दोहा।

रे मन तज निज बहिर्गति, अंतर्वर सुख हेत।
अंतर्सुख बिन सुख नहीं, विदित सनातन नेत॥६४॥

श्लोकः।

चेतश्चिन्तय मा रमां सकृदिमामस्थायि-
नीमास्थया, भूपालभृकुटीकुटीरविहर-
व्यापारपण्यांगनाम्। कन्थाकञ्चुकितः
प्रविश्य भवनद्वाराणि वाराणसीरथ्याप-
ङ्क्तिषुपाणिपात्रपातितां भिक्षामपेक्षामहे १७

पुनः कवित्त।

चंचलाको[1] मत चिंत चंचला करति चित्त,
चंचलाको चीन चित्त चंचलाके[2] वत है।
भूपनकी भृकुटी[3] कुटीमें वार[4]वधूवत,
गतागतके व्यापारबिच विचरति है॥
काशीजू की वीथिन,[5] के जूथनमें[6] धाम ग्राम,
ताके द्वारे अटों[7] ओढ़ कंथा ए मोमति है॥

---

१ लक्ष्मी. २ बिजली. ३ भौंह की रेखा में. ४ वेश्या के सदृश.
५ रास्ताओं के ६ समूहों में. ७ विचरूं.

तातें पाणिपात्र[1] परे भिक्षा तासों प्राण धरे,
कमला[2] कीरति लोक कमला[3] करति है ॥ ६५ ॥

दोहा ।

श्री[4] हरके श्रीहरपुरी, बाराणसिको वास ।
जीवत भुगत मुकत मरे, करे चहो चित तास ॥ ६६ ॥

श्लोकः ।

उद्यानेषु विचित्रभोजनविधिस्तीव्रातितीव्रं तपः, कौपीनावरणं सुवस्त्रममितं भिक्षाटनं मण्डनम् । आसन्नं मरणं च मंगलसमं यस्यां समुत्पद्यते, तां काशीं परिहृत्यहन्तविबुधैरन्यत्र किं स्थीयते १७

पुनः कवित्त ।

उपबनोंमध्य सिद्ध[5], भोजन विविध[6]विध,
तपवृद्धहूते जास मैं प्रधान है ।
पटल कोपीनही को अप्रमाण पट नीको,

---

१ हाथ रूप पात्र में. २ लक्ष्मी. ३ मलिन. ४ लक्ष्मी. ५ बना बनाया.
६ अनेक प्रकार का ।

भीखही को रमणीको रटनो प्रमाण है ॥
चार खाणी प्राणी जामैं मरके न फेर आवैं,
आवै ढिंग मृत्यु तामें मंगल समान है ।
छोड़ ऐसी काशी कैसे सुधी और ठौर वैसे,
कैसे भये देव यम हाँसी को सथान है ॥६७॥

दोहा।

अङ्ग त्यजहिं वाराणसी[१], तऊ न खेद कछु मोहि।
त्यजहिंसुजनखल मुक्तिप्रद[२],दुसह दुःखमम ओहि॥
रे मन तू तो त्याग जिन, मुक्तिद्वार हरिद्वार।
सुमर सरित [३]समरारितिहं,जगजीवन दिनचार ६९

श्लोकः।

नायं ते समयो हरस्यमधुना निद्राति
नाथो यदि,स्थित्वा द्रक्ष्यसि कुप्यति प्रभु
रिति द्वारेषु येषां वचः। चेतस्तानपहाय
याहिभवनं देवस्य विश्वेशितु र्निर्दौवारिक
निर्दयोक्त्यपरुषं निःसीमशर्यप्रदम् ।१८।

---

१ काशी। २ मुक्ति के देने वाली। ३ महादेवजी।

पुनः कवित्त।

भूपन की चाहि करे कहे चित्त जाहिं धरे,
गये छड़ीदार हरे सतकार जोत है।
ना रे इह काल महीपाल गुरु[1]मते माहिं,
अजै समो नाहिं नरनाथ सुखी सोत हैं॥
सुने बैन तेरे जब क्रोध नैन हेरे प्रभु,
जाके पौरे[2] ऐसे कौरे वाकको उदोत हैं।
छोड़ ताके पौर दौर मोक्ष ठौर काशीमाहिं,
ध्वनि[3] न कठोर जहाँ दौरप[4] अगोत[5] हैं॥७०॥

दोहा।

अप्रमाण आनंदप्रद, पुना जन्म जहँ हान।
वसो मना आनन्दवन[6] तज नृप कृपणास्थान॥७१॥
अलं भरतवैराग्यको, प्रथमोऽध्याय अनूप।
स्वमन शिष्यको शिक्षमत, दई स्वामिसम भूप॥७२

दोहा।

द्वितिय पश्चात्तापके, भाखे दशक श्लोक।
जाके श्रवण मनन करे, नष्ट होहिं मन शोक॥१॥

---

१ गुप्त विचार में। २ द्वारपर। ३ शब्द। ४ द्वारपाल। ५ गोत्रादि के पक्षपाती नहीं, किंतु समदर्शी हैं। ६ काशी।

श्लोकः।

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत् संसार-विच्छित्तये, स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः। नारीपीनपयोधरोरु-युगलं स्वप्नेऽपि नालिंगितं, मातुः केवल-मेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥१९॥

कवित्त।

पादकंज[1] शिवजीके न अराधे हम नीके,
कारण उधार जीके रमणी के चीन मैं।
नाकपौर[2] ताकनके धाकनमैं पुण्य दक्ष[3],
तेऽपि न एकत्र कछु कौन भागहीन मैं॥
उभैपीन[4]कुची नारी भारी रूपगुणवारी,
स्वपनेमँझारी भी आलिंगन न कीन मैं।
माताको यौवनबन तासु नाश हेतु जन,
केवल कुठार[5] होय खोय सुख तीन मैं॥ २॥

---

१ चरणकमल. २ स्वर्गद्वार. ३ समर्थ. ४ दोनों पुष्ट स्तनों वाली. ५ कुल्हाड़ी।

श्लोकः।

विद्या नाधिगता कलंकरहिता वित्तं च
नोपार्जितं, शुश्रूषापि समाहितेन मनसा
पित्रोर्न संपादिता। आलोलायतलोचना
युवतयःस्वप्नेऽपि नालिंगिताः, कालोऽयं
परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेरितः २०॥

पुनः नारद छन्द।

अदोष वेदबोधको, अधेन[1] मैं न कीन है,
न सेव माततातकी, मॅझारचित्त हीन है।
दया न दीन जंतुपै, करी मनाक[2] मैं कबी,
न न्यायवंत द्रव्य भी, इकत्र कीन लौं अबी ॥ ३॥
विशाल नीलकंजनैन, चंचले हृदे प्रिया,
न कीन सोपनेपि मैं, अलिंगनं महात्रिया।
परपिंडपै सलोग काक[3], यों समो गतो हमें,
विकाश[4]मातआस्यकंजनाशको करी[5] जमें ॥४॥

---

१ अध्ययन अर्थात् पठन. २ थोड़ी भी. ३ कौवे के समान. ४ ख्यातिरूप माता के मुखकमल के नाश के लिये. ५ कीया।

श्लोकः।

धिक्तज्जीवितमापदांहिनिलयंपित्रापस-
बन्धूर्जितं, दीनानाथजनोपकारकरणव्या-
पारदूरीकृतम्। मन्दीभूतशशांकशेखर-
चनाश्तनतटप्रश्लेषविश्लेषितम्॥ २१॥

पुनिः कवित्त।

ता जीवनको धिक्कार जोऊ दुःखको अगार[१],
पितृ बंधु परिवार कर नित्त जित्त है।
दीनानाथ जनोंपर उपकारको व्यापार,
ताको त्रिसकार जामँझार नित्य थित्त है॥
जाके भाल[२] विषे इंदु[३] द्वंद्व ता पदारविंद,
ताको ध्यान जामो मंद भूत[४] निंदा नित्त है।
[५] अललोल लोचन विशाल कुचतट त्रिया,
ताको मेला भी न भयो योही वेला[६] वित्त है॥५॥

---

१ स्थान. २ मस्तक में. ३ चन्द्र. ४ प्राणियों को निंदा. ५ अलंकृत
था चञ्चल. ६ समय.

नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्याविनीतोचिता, खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः। कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये तारुण्यं गतमेवानिष्फलमहोशून्यालयेदीपवत २२।

पुनः कवित्त।

[1]वादी वृंदके दमनवारी प्यारी संतन को,
ऐसी विद्याको शलोक पढ्यौं मैं न लोक मैं।
खडगों के अग्रकर [2]करी कुंभपीठन को,
पीठके के यश नीठ कीनों सुरलोक मैं॥
कांताके अधर मृदु दलवत रसानिधि,
सो न चूसे उदे विधु[3] स्वेछित अशोक मैं।
ज्ञान नाक[4] नारी तीनों को न रस लीनो अहो,
वृथा युवा दीनो जैसे दीप शून्य ओक[5] मैं॥६॥

---

१ वादियों के समुह का। २ हाथियों के मस्तकों को। ३चन्द्र। ४स्वर्ग ५ घर में।

अजानन्माहात्म्यं पपाति शलभस्तीव्रद-
हने, स मीनोऽप्यज्ञानाद्वडिशयुतमश्नाति
पिशितम्। विजानन्तोऽप्येते वयमिह
विपज्जालजटिलान्न मुञ्चामः कामानहह
गहनो मोहमाहिमा॥ २३॥

पुनः कवित्त।

दीप में पतंग परे जरे न प्रताप जाने,
मीन[१] सु अज्ञाने भखे कुंडीसिले मासको।
गज[२] गजीहेत पर्‍यो खात[३] खात अंकुश को,
रागमें [४]कुरंग राग कर निजनाशको॥
पंकज[५]के गंधबीच नीच भृंग[६] मीच गहे,
इति आदि अज्ञ नाश करें निज स्वासको।
अहो हा सघन महामोहको प्रताप लहा,
शुभाशुभ जानों पै न हानों भाग आशको॥ ७॥

---

१ मछली. २ हथिनी के लिये. ३ खन्दक, ४ मृग, ५ कमल, ६ भ्रमर।

दोहा।

मोहमहातमरूपको, गहन महातम आहि।
मोहे पुरुष महातमा, जहँ विवेक[1] रवि नाहिं ॥८॥

श्लोकः।

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं
केषाचिदेतन्मदमानकारणम्।
स्थान विविक्तं यमिनां विमुक्तये
कामातुराणामतिकामकारणम् ॥२४॥

सवैया।

ऐ श्रुतिज्ञान सुजाननके अभिमान मदादि विकार निवारे। केचित[2] मोसम नीचनके चितमो बहु मान मदादिक धारे॥ शून्य यथा मठ साधुको अति मोक्षको साधन दोष प्रहारे। सो हमसे [3]मदनातुरको अतिकामको कारण वाम समारे॥ ९॥

श्लोकः।

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया,
वियोगे को भेदस्त्यजाति न जनो यत्स्व-

---

१ ज्ञानसूर्य, २ कोई, ३ कामी को।

यममून्। व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरि-
तापाय मनसः स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसु-
खमनन्तं विदधाति ॥ २५ ॥

पुनः कवित्त।

पुण्यन के वश्यते सुभोग चिर[1] वसते,
निमित्त नशे नशते मर्याद आदि तिनमें।
कान भेद भोगन के भेदमैं न तजे जन,
एकको वियोग तो अवश्य होत तिनमें ॥
स्वते जब जावें तब मनको तपावें भारी,
मोक्षे तिने आप ताप[2] मोछे तिन क्षण में।
ऐसे मोक्ष[3] प्रतिबंधी विषे लखे मैं संबंधी,
को कुभागी बिन मैं जो रागी इनमें ॥ १० ॥

श्लोकः।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं
वयमेव तप्ताः। कालो न यातो वयमेव
यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः२६

१ बहुत काल तक। २ छोड़े। ३ मोक्ष का प्रतिबन्द करने वाले।

पुनः मात्रिक सवैया ।

अहो सखे मैं भोग न भोगे भोग्यो गयो आप मैं मूढ॥
क्रम क्रम हमरो प्राक्रमसगरो लीनोभोगेंभोगअमूढ॥
भोक्ता[1]जान भोगमैं भोग उलटा भोगों भोग्यो मोहिं॥
शिश्नोदरपरभयोनचीनोकीनोमैंनिजपसोंद्रोह ॥ ११॥
इंद्रियगणके संयम तपको ताप्यो मोहिं न कबहूं ठीक॥
काम क्रोध लोभादि अग्निकर मैं संतप्त भयो अबतीक॥
कालचक्रवत भ्रमत सर्वदाशीत उष्णावपुधर विख्यात
समैनबीत्योहौंहींबीत्योभयोविलक्षणममसंघात[2] १२
तृष्णा जीरण भईन अबलों मैं हूं भयो जरजरो आप।
वृद्ध भयो दुर्बुद्धि गई नहिं मो उरमें यहि गुरुसंताप॥
अधमकाममोअवधिगईसबलब्धभयोअबलौंकछुनाहिं
हहानहरके[3]पाँ[4]पकरेहर[5]पापकरेमैंअहनिशिमाहिं १३

श्लोकः ।

आघ्राय पुस्तकं धन्याः सर्वं विद्म इति स्थिताः । शतवारं पठित्वापि हा न विद्मो जडा वयम् ॥२७॥

---

१ भोगी । २ समुदाय । ३ श्री शिवजी के । ४ चरण । ५ प्रत्येक ।

पुनः सवैया।

फूल निबंध[१] सुगंध [२]रहस्यकुंधारतजेसबस्वातमचीनो
ते धन याविधि राजतजे भवबंधनवृंद कियो जिहँ छीनो
मैं शठ ते शतवार पढ़ेनहिं स्वातमचीनु भयो मद पीनो
हा नरके तनमो बसके नरके[३] बसबेकुं पराक्रमकीनो १४

श्लोकः।

ब्रह्मज्ञानविवेकिनोऽमलधियः कुर्वन्त्यहो दुष्करं, यन्मुंचन्त्यापि भोगभांज्यपि धनान्येकान्ततो निःस्पृहाः। संप्राप्तानि पुरा न संप्रति न च प्राप्तौ दृढप्रत्ययो, वाञ्छामात्रपरिग्रहाण्यपि परं त्यक्तुं न शक्ता वयम्॥ २८॥

पुनः कवित्त।

ब्रह्मज्ञानके विवेकी विमल [४]मनीषा जाँकी,
अहा [५]दुहक्रिया ताँकी पायो द्रव्य त्यागे हैं।
भोगनकी राशिको अवास धनते उदास,

---

१ ग्रन्थ, २ मर्मको, ३ नरकमें वास करने के, ४ बुद्धि, ५ दुष्कर।

जांते भोगों ते निराश आतमानुरागे हैं ॥
आदि मैं प्रापत अप्रापत [1]इदानीं वित्त,
दृढ न [2]प्रतीति हम आगे कछु पागे हैं।
इच्छा मात्र धनों के इकत्रको न त्याग सकें,
वही बड़भागे हैं हमारे भाग भागे हैं ॥१५॥

श्लोकः।

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं, शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम्। वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमयी च कन्था, हा हा तथापि विषया न परित्यजन्ति ॥ २९ ॥

पुनः अनंगशेखर छन्द।

याच[3] याचके अहार नाहिं सोपि स्वादवार,
लाभ होत एकबार भूखतापको अवार,
शैनभूमिपै बनो न शाक सैनको गनो,
शरीरमात्र पोखनो न जोबनो सुपै दवार ॥
[4]क्षीणचीर गोदरी अनेक लीरसों करी,

१ इस समय, २ विश्वास, ३ माग माग के, ४ फटे कपड़े।

करी उजार झोंपरी अधेन[1] ग्रंथ वारवार ॥
हाइ हाइ भोग चाहि नाहिं मैं तजे अजेपि,
मोर चित्त बैलको सवार बैलकेऽसवार ॥१६॥

दोहा।

अलं[2] भरत वैराग्य को, भयो दूसरोऽध्याय।
निंद्यो भूपति स्वापको, कल्यानारिसुभाय ॥१७॥

दोहा।

अब तृतीय अध्याय में, आठ श्लोक उचार।
वरणो महिमा कालकी, सुनो जनो उरधार ॥१॥

श्लोकः।

अमीषां प्राणानांतुलितबिसिनीपत्रपय-
सा, कृते किं नास्माभिर्विगलितविवेकै-
र्व्यवसितम्। यदाढ्यानामग्रे द्रविणमद-
निःसंज्ञमनसां, कृतं वीतव्रीडैर्निजगुणक-
थापातकमपि ॥ ३० ॥

---

१ पढना। २ पूरा हुआ।

कवित्त।

इन प्राणत्राणकाज के के मैं न कीने काज,
कंजदलपै[1] विराज कंकणोज्यों[2] हत है।
धनमदकर जाके अंध मन आगे तांके,
बके गुण बांके निज तजी लाज मति है॥
हौं तो गुणखानि तुम शक्र[3]के समान,
कुरुक्षेत्र ग्रसे भानु[4] मोमैं दान तदवत है।
कीनी मैं इत्यादि क्रति शासनानिमित्त पर,
शासना भी सही परशासना रहत है॥ २॥

श्लोकः।

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलु
ते,सम यैःसंवृद्धाःस्मृतिविषयतां तेऽपि
गमिताः।इदानीमेते स्मःप्रतिदिवसमा-
सन्नपतनाद्गतास्तुल्यावस्थां सिकति-
लनदीतीरतरुभिः॥३१॥

---

१ कमल के पत्र पर। २ जलकण के समान। ३ इन्द्र के। ४ सूर्य।

पुनिः कवित्त।

जाहिं मातपितातेमैं भयो उतपन्न ते तो,
कालवश भये चिरकाल[1] बीतगयो है।
सम[2] बैसवारे द्वारे सिमृति सिधारे सारे,
रहे हम शेष देह वृद्धवेष लयो है॥
नदी रेत तीरपर तरु यों शरीर भयो,
प्रतिदिन मृत्युतीरतीर अब अयो है।
गिले [3]कालव्यालसम मेंडकके अजे हम,
भजें भोगमच्छरों को मोसों मूढ जयो है ॥ ३ ॥

श्लोकः।

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं, गुणोदारान् दारानुत परिचरामः सविनयम्। पिबामः शास्त्रौघान् द्रुतविविधकाव्यामृतरसान्, न विद्मः किंकुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने॥ ३२॥

---

१ बहुतसा काल, २ बराबर उमरवाले, ३ कालसर्प के समान।

पुनः त्रिभंगी छन्द।

है कछुक निमेषा[1] हमरी वैसा लखौं न कैसा काम धरौं।
[2]सुरसरिके तट पर कुटिआठटकर तामैंतपकर तापहरौं॥
गुणजाहिंउदारे असगणादारें ममरुचिधारेंतिहँविचरौं।
गणग्रंथनमो उतकाव्यनमो युत कथारसामृतपानकरौं॥

दोहा।

तपत्रियसुधा असिद्धत्रय, निमिष आयुषामाहिं।
दुःखरूप [4]भवते अबै, बिन निराश सुख नाहिं॥५॥

श्लोकः।

यत्रानेकः क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र चान्ते न चै-
कः। इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन्
द्वाविवाक्षौ कालः काल्या सह बहुकलः
क्रीडति प्राणिसारैः॥ ३३॥

पुनः कवित्त।

कालभगवान वृंद[5] कलावान [6]कालीसंग,
खेलत चौसार चार दिगहूंकी घरके।

१ पल, २ उमर, ३ गङ्गाजी के, ४ संसारसे, ५ बहुतसी, ६ कालकीस्त्री,

चारखाणी प्राणी गोटा रैन दिन पासे जोटा,
मारत अचूक चोटा दंपती अडर के ॥
जहाँ एक गेहमों अनेक तहाँ एक रहे,
एकते अनेक है क्षणेक एकूं सरके।
काल काली खाली कीने लोकपाली सने,
चौपट न हाली अज शेष[१] लोक करके ॥६॥

श्लोकः।

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं, व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते। दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते, पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत ॥३४॥

पुनः कवित्त।

भानुहुँके गतागतकर[२] दिनदिनप्रति,
प्राण मोरे घटें जैसे कोरे घटे पानि है।
ग्राम[३] कामों कर सारे भवके व्यापार भारे,
तामो मत्त मतवारे मृत्युको न ध्यान है ॥

१ पूर्ण। २ गमन, आगमन अथवा उदय, अस्त। ३ बहुत से।

ज़ातज[१]रापातउतपात पखे भीतजात[२],
चीतमो न जात जैसे भीतमो न भान है।
मोहरूप मदिराप्रमादकर पान कीनो,
बौरा भयो भव गोराभवको न ज्ञान है ॥७॥

श्लोकः।

जीर्णा एव मनोरथाः स्वहृदये यातं जरा यौवनं, हन्तांगेषु गुणाश्च वन्ध्यफलतां यातागुणज्ञैर्विना। किंयुक्तं सहसाऽभ्युपैति बलवान् कालः कृतान्तोऽक्षमी, ह्याज्ञातं स्मरशासनाङ्घ्रियुगलं मुक्त्वाऽस्ति नान्या गतिः ॥३८॥

पुनः मात्रिक सवैया।

अहो विचित्र मनोरथ सगरेमें उरमें संभव फलहीन।
इनेनआदि अंतमाधिचीनों, जलतरंग[३]इवउपजतलीन॥
अनुजाग्रतबालादितीनत्रिकमैंनहीनकछुसुखपातिक्षीन
जराकीनयौवनकोभोजनप्राक्रमहीनभयोमैंदीन ॥८॥

---

१ जन्म, जरा (बुढ़ापा) और मरणका उपद्रव। २ भय। ३ पानीकी लहर।

बाझगुणाझोंमोतनमैं गुणअफल भयेसबज्यों त्रियबाँझ
कालछमाविनबली कृतांतो [1]उपप्रापति अबहनेंकिसाँझ
सहसा युक्तिमुक्ति हितको शुभजाँकर मनकोसहसाजाय
हरके पायकंजयुग हरके अवरश्रेयकोकौन उपाय॥९॥

श्लोकः।

भ्रातःकष्टमहो महान्स नृपतिः सामन्त-
चक्रं च तत, पार्श्वे तस्य च सापि राजप-
रिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः। उद्रिक्तः स च
राजपुत्रनिवहस्ते बन्दिनस्ताः कथाः,सर्वं
यस्य वशादगात् स्मृतिपदं कालाय तस्मै
नमः॥ ३६॥

पुनः कवित्त।

जांके वांमे दाहने [2]समंतचक्र होते अग्र,
राजनकी सभा थी [3]मयंकमुखी नारिया।
भूपनके पुत्र थे विचित्र बीर अहंकारी,
वृंद बंदीजन होते वंश के उचारिया॥

---

१ समीप, २ सामन्त राजाओं के समूह, ३ चन्द्रमुखी।

अहो भाई भारी कष्ट भारी भूप भये नष्ट,
सि[1]मृतिपदे प्रविष्ट जाँकी कथा भारियां।
हिंसक [2]प्रपंचसविरंचिको [3]असंग पुना,
ताँहि कालवीरको जुहार वारबारिया ॥१०॥

सोरठा।

अहो भ्रात अतिकष्ट,जासु कालके घशि भयो।
भये प्राक[4] सबनष्ट,गये सिमृतिपथ तिंहि नमो॥११

टीका-अरथ भुजङ्गप्रयात छन्द।

जिसे कालगाले, सुभूपालमाले।
जिसे आसपासे, सुमंत्री प्रकाशे ॥ १२ ॥
महावीर स्याने, सबी नीति जाने।
पुनर्जाहिं आगे, सभीराज लागे ॥ १३ ॥
चलें अग्र जाँके, तने भूप बाँके।
[5]युवाद्रव्यमाते, सहंकार जाते ॥ १४ ॥
हुते चार नग्रे, सभोगा समग्रे।
तहाँ राजधानी, हुती शक्र[6]सानी ॥ १५ ॥

---

१ स्मरणगोचर होगए. २ ब्रह्मासहित संसार को. ३ पापादि सङ्गरहित.
४ पहले. ५ जवानी और धनसे मत वाले, ६ इन्द्र की सी.

त्रिया इंदु[१]तुंडी, मनो काम[२]कुंडी।
जटी लाल मोती, घनी धाम[३] होती॥१६॥
चले भाट गाते, चिरंजी दात।
जिनै कोप आगे, सब भूप भागे॥१७॥
शिरे छत्र छाजे, दिशा चार भ्राजे।
करी है सवारी. करी है सवारी॥१८॥
इने आदिराज, हुते सासमाजे।
सभी काल मारे, गने कौन सारे॥१९॥
भयेते पुराने, न को ताहिं जाने।
कथा जे पुराणे, सुने नाम जाने॥२०॥
पुना तीन लोकी, सुनी औ विलोकी।
निमेषेकमाहीं, गिले काल ताँही॥२१॥
युवा बृद्ध छोरे, कहूको न छोरे,।
नमो तासु काले, जिसे सर्व गाले॥२२॥

दोहा।

हने हनत पुनि हनैगो, उत्तम मध्यम मन्द।
गने बरोबर सर्व को, ताते ताको बन्द॥ २३॥

---

१ चन्द्रमुखी, २ कामदेव का पात्र हैं, ३ ज्योति वा प्रकाश।

श्लोकः।

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं, दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम्। सम्मानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं, कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम्॥ ३७॥

पुनः कवित्त।

जिनो धनो कर सब मिले मनो काम जब,
ताको भयो सिद्ध तब कहा लाभ मान है।
अ[1]रिनके शिरपर चरण को धारकर,
कहा भयो डार डर सोयो साभिमान है॥
जो सनेही जनों धनों कर मान कीनो घनो,
कहा भयो ताहिं भनों तू तो कुल भान[2] है।
कल्पपरयंत भोग भोगे जंतु कहा होग,
जाँते अन्त नाशी लोक सने कारकान है॥२४॥

---

१ शत्रुओं के, २ वंश में सूर्य समान है।

दोहा।

भयो कालभय प्रगट कर, तृतिय इतिश्री आप।
वैरागादि सुतहिं जने, हने सर्व भय ताप ॥ ३॥

दोहा।

उत्कंठा निज चित्तकी, कहें चतुर्थेऽध्याय।
करत विनय नृप शम्भुपहँ, सात श्लोक बताय ॥ १

श्लोकः।

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः। कदा शंभो भविष्यामि कर्मनिर्मूलने क्षमः ॥ ३८ ॥

तोटक छन्द।

इकएकरु निस्पृहशांतमना। करपात्रपवित्रदिशावस[1]ना
करमा[2]निरमूलनमौंनिपुना। शिवजूकबहैममऐसदिना

श्लोकः।

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने, सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु

---

१ दिगम्बर. २ कर्मों का नाश करने में,

ध्रुसरितः। भवाभोगोद्विग्नाः शिवशिव शिवेत्यार्त्तवचसा, कदा स्यामानन्दोद्गत-बहुलबाष्पप्लुतदृशाः ॥ ३९ ॥

पुनः वही कवित्त।

शांत ध्वनी या[1]मिनीकी चाँदनी अमित द्युति,
तासों गंगातीरतलो ऊजलो लसत है।
तापै सुखी वसूं कहूं शिव शिव शिव कहूं,
ऐसी वाणी भनूं जैसे प्राणी दुखारत है॥
प्रेमउदे पाथ[2]साथ [3]दृग भिगजाहिं कब,
आवैं साह साहसे रोमांच पुलकत है।
भवके आभोगनते भयो अब [4]उदवेग,
करो ऐसी विधि वेग ऐसी मोरी मात है॥ ३ ॥

श्लोकः।

स्नात्वा गांगैः पयोभिः शुचिकुसुमफलै-र्र्चयित्वा विभो त्वां, ध्येये ध्यानं निवेश्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यङ्कमूले। आत्मा-

१ रात्रिकी. २ जल के साथ. ३ नेत्र. ४ भय.

रामःफलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादा-
त्स्मरारे, दुःखान्मोक्ष्ये कदाऽहं तव
चरणरतो ध्यानमार्गैकघस्रैः ॥ ४० ॥

पुनः कवित्त।

नायकै नवाऊँ गंगापाथ साथ नाथ तुमे,
शुचि फूलफलों कर रुचि धर ध्यावेंगे।
ध्यानयोग ध्यान तेरो तामैं लोग मन मेरो,
[1]शैलदरी शिलाके पर्यंकपै सुहावेंगे।
सुखी निजानन्द कर फलाहारी रतितर,
गुरोंके वचनमों चरण थारे भावेंगे।
[2]समरारी थारी कृपा अनुसारे सारे दुख,
सारें हम [3]जदों सो [4]दिहारे [5]कदों आवेंगे ॥४॥

श्लोकः।

अतिक्रान्तः कालो लटभललनाभोगसु-
भगो, भ्रमन्तः श्रान्ताः स्मः सुचिरमिह
संसारसरणौ। इदानीं स्वःसिंधोस्तटभुवि

---

१ पर्वत की कन्दरामें, २ हे शिवजी! ३ जब, ४ दिन, ५ कब।

समाक्रन्दनगिरः, सुतारैः फूत्कारैः शिव-
शिवशिवेति प्रतनुमः ॥ ४१॥

पुनिः कवित्त।

सुंदरीके भोगनमें सुंदर ए काल गयो,
धारके भवोट भ्रम्यो जगमग चिर[1] मैं।
पायो अतिखेद गयो थाक निरवेद अब,
चहों गंगातीरपर बहों उत गिरिमैं॥
तुंग होंहिं तनवार नैन पूरे प्रेमवारि,
कंठ दबे नामोचार गंगा जाके शिरमैं।
भोगनरकागनिके हेतुको न भजों अब,
करो ऐसी विधि [2]भवों भवमैं न फिरमैं ॥५॥

श्लोकः।

अनावर्ती कालो व्रजति स वृथा तन्न गणितं, दशास्तास्ताः सोढा व्यसनशतसं-पातविधुराः। कियद्वा वक्ष्यामः किमिव

---

१ बहुत काल तक. २ होऊं,

बत नात्मन्यपकृतं, वयो यावत्तावत्पुनर-
पि तदेव व्यवसितम् ॥ ४२ ॥

पुनः कवित्त।

काल ए पुनागमी[१] न सो तो भयो वृथा क्षीण,
तन चीन मन दीन नारी रमणीकमैं।
सैकरे कलेशोंके प्रवेशोंकर व्याकुली जो,
सो सो दशा सही सही कहाँ कहाँ तीक मैं ॥
जो जो करों काम सो सो देत दुखग्राम[२] मोको,
अहो वही अपकाम करों अबतीक मैं।
प्रबल अदृष्ट[३] दुष्ट जोरत अनिष्टमाहिं,
याके शात विना नाहिं शांति चीनों ठीक मैं ॥६॥

दोहा।

नष्ट अदृष्ट न ज्ञानविन, ज्ञान न विन वैराग।
ताते भवनिर्वेदप्रद, जाते भवदुख त्याग ॥

श्लोकः।

अहौवाहारेवाबलवतिरिपौवासुहृदि वा-

---

१ फिर आने वाला. २ दुःखों समूह. ३ प्रारब्ध।

मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा । तृणे वा स्त्रैणे वा मम सम-दृशो यान्ति दिवसाः, क्वचित्पुण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः ॥ ४३ ॥

पुनः सवैया ।

पुण्यबनेबसकौनोंदिनभनों[१] भोशिवशंभुजटीसमरारी
नागनमोतिनहारनमो उतशत्रुबलौमैं सुमित्रमँझारी ॥
माहिंमणी[२]मृद्पिंडाविषे मधफूलोंके साथरपाथरभारी
वा तृणबीच त्रियानविषे सबमैंसमह्वैकबदृष्टि मारा

श्लोकः ।

गंगातीरेहिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य, ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां ग-तस्य । किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः, कण्डूयन्ते जरठहरिणाः शृंगमंगे मदीये ॥ ४४ ॥

---

१ कहूं. २ मिट्टीके पिण्ड (ढेले) में ।

पुनः कवित्त।

गंगातीरपर हिमगिरिशिलापर हम,
बाँधे पदमासनको मन इंद्री जीतके।
ब्रह्मके सुध्यानकी अभ्यासविधिसों निवास,
योगनिद्रामाहिं करों हरों ताप चीतके॥
जरठ[1] कुरंग[2] करें शृंगोंसंग कंडू मोहिं,
सुखसों अभीत[3] मोको जानें सम [4]भीतिके।
पारवतीनाथ मे अनाथके अभीतिवारे,
उतम दिहारे कब आवें ऐसी रीतिके॥९॥

दोहा।

[5]निजविषाणकर हरिण कब, संघर्षहिं[6]मम देह।
मोहिं खबर है हर नहै, कब है मम अस देह॥१०॥

श्लोकः।

कदा वाराणस्याममरतटिनीरोधसि वसन्,
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽ-
ञ्जलिपुटम्। अये गौरिनाथ त्रिपुरहर

---

१ बूढे, २ मृग, ३ भयरहित, ४ दीवारके समान, ५ अपने सीगों से, ६ घिसेंगे।

शम्भो त्रिनयन प्रसीदेत्याक्रोशन्निमि-
षमिव नेष्यामि दिवसान् ॥४५॥

पुनः कवित्त।

काशी गंगाके किनारे [1]भवते किनारे होके,
कदौं वसौं वसन कौपीन एक धारके।
दोऊ हाथ जोरकर नाय माथ नमो करौं,
मृदुवाणीसाथ[2] रटौं नाम समरारिके॥
भो प्रभो भवानीवर शंकर त्रिनेत्र हर,
त्रिपुरारी चन्द्रधर भवभवहारिके।
क्षणसम दिन सब मोरे बीत जावें जब,
ऐसे अह[3] आवैं कब कहो कृपा धारके॥११॥

श्लोकः।

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः
स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामावधिग-
तीः। वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकि-

१ संसार से, २ कोमल वाणी से, ३ दिन।

रणैस्त्रियामां नेष्यामो हरचरणचित्तैक-
शरणाः ॥ ४६ ॥

पुनः शंकर छन्द ।

कब देहुँ मैं अरथीन[1] सर्वस जोरकर कर[2] दोय ।
कब तरुण[3] करुणा साथ अंतःकरण पूरण होय ॥
दुष्कामको परिणाम योनी तिरयगादि[4] अपार ।
तिहँ दुःखसीमा पिख डरों निज मंद कर्म निहार ॥ १२
जिस पुण्यवनमहिं शरदहिमकर किरणपरिणत चारु
बन तासुमैं कर वास मैं निर्वेदसहित विचार ॥
मम चित्तको हरचरणकी तर शरण होय सराग ।
जब इमि बितावों विमल रैना तबी मैं बड़भाग ॥ १३

दोहा ।

तज स्वतंत्र भवभोग कब, लखों निजातम आप ।
देहबिषे संदेहविन, विचरों तब निहपाप ॥ १४ ॥

श्लोकः ।

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न

१ याचकों को. २हाथ. ३ नवीन. ४ पशु पक्षी आदि ।

संतोषतः, सोढा दुःसहशीतवाततपनाः
क्लेशान्न तप्तं तपः। ध्यातं वित्तमहर्निशं
नियमितप्राणैर्न शम्भोः पदं, तत्तत्कर्म
कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वञ्चिताः।

पुनः दोहा।

मुनों कर्म जो जो करें, सो सो हम हूँ कीन।
तिन कर्मोंके फलोंकर, हम ठगे मतिहीन ॥ १५ ॥
मुनिन लह्यो सुखरूप फल, मोहिं दुःखफल लीन।
करे कर्म सम विषम[1] फल, यों मैं ठग्यो दीन ॥ १६
तजे गृहोचित सुख मुनिन, कर संतोष विवेक[2]।
अहं[3] विदेशकलेशकर, त्यागे भोग अनेक ॥ १७ ॥
ऋषिन क्षमाकर खलोंके, [4]सोढे दुर्वचनादि।
मैं भी सहे कुवात पर, कर याचन सेवादि ॥ १८ ॥
शीत वात आतप दुसह, मुना कलेश अपार।
मुनिन सहे तप धारकर, हमों सहे सह नार ॥ १९ ॥
[5]हरपदपद्मयुगल मुनो, ध्यायो मन कृत वाच।

---

१ विपरीत, २ ज्ञान, ३ मैं, ४ सहे, ५शिवजीके चरणयुगल।

प्राणोंकर दिनराततिमैं, ध्यायो धनको साँच ॥२०॥
क्षमा तृप्तियुत दुर्वचन, सहों तजों गृहभोग।
सरुचि ध्याउँ हरपाँउँ मैं, तब तासम फल होग ॥२१॥
ऐसे शंकरवंत[1] दिन, हे हर शंकर शंभु।
होहिं कभी सम मुनिनके, मैं विचरों तज[2]दंभ॥२२॥

अथवा दोहा।

स्वरग अखयसुखलाभहित, करे [3]मखादि [4]सरात।
करे योग ऋषिवाक गहि, पुना मुनिन मम ठाग २३
ता क्रतुक फलको जबे, [6]परामर्श मैं कीन॥
जगत[7]पीन=भय मम हृदय, होय पुण्य जब छीन।२४।
गिरत[9]नाकगिरिते[10] अधे, पुरुषपखान तुरंत।
सहत कष्टते कष्टतर, अनुभव करत सुजंत ॥ २५ ॥
जन्म मरण दृढ करणको, अतिदृढ [11]करणसुभोग।
ताहित मैं क्रतु करे भव को, मोसम खल होग ॥२६॥
भोगबड़ाई कर सुनो, मोहिं लुभायो चित्त।
[12]कर्मगर्त्तमाँहिं डार मम हऱ्यो मुक्तिसुखवित्त ॥ २७

१ कल्याणमय, २ पाखण्ड, ३ यज्ञादि, ४ रागसहित, ५ यज्ञके, ६ विचार, ७ उत्पन्न होता है, ८ पुष्ट, ९ स्वर्गरूप पर्वतसे, १० नीचे, ११ इन्द्रियभोग, १२ कर्म के गढ़े में।

सोरठा।

करे संतोष विवेक,तजे न गृहके उचित सुख।
त्यागे भोग अनेक भ्रमण विदेश कलेश कर॥२८॥

दोहा।

अहो क्षमा कर खलोंके,सहे न दुर्वचनादि।
सोढे मोहि कुवाक पर,कर याचन सेवादि॥ २९॥
शीत वात [1]आतप दुसह,पुनः [2]कलेशकदंब।
मैं न सहे तप धार कर, सोढे बीच कुटुंब॥ ३०॥
ध्यायो धनको [3]अहर्निश,मन कृत वचन सनेम।
ईश्वरके पदपद्मको, ध्यायो त्यों न सप्रेम। ३१॥
ए [4]गुरु पश्चात्ताप उर,भयो न आतम वित्त।
बिन विचार मैं मुग्धको,लियो विख्यों भवजित्त।३२।
दुष्ट अदृष्ट सनेहयुत, उरकागर परवर्ण।
भोगरागमय सो न लय,अकविचार अवर्ण॥३३॥

सोरठा।

प्रभु अनाथके नाथ, मैं अनाथके माथपर।
कृपादृष्टिके साथ,शिवानाथ निजहाथ धर॥ ३४॥

---

१ धूप, २ क्लेशों के समूह, ३ रात दिन, बड़ा।

दोहा।

विन वैराग्य विवेक मैं, तव पदपंकज टेक।
श्रीशंकर मम शं[1] करो, दे वैराग्य विवेक ॥ ३५ ॥

श्लोकः।

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः
परं ध्यायतामानन्दाश्रुकणान् पिबन्ति
शकुना निःशंकमंकेशयाः। अस्माकं तुम-
नोरथोपरचितप्रासादवापीतटक्रीडाका-
ननकेलिकौतुकजुषामायुःपरं क्षीयते ॥

पुनः चौपाई।

भवमेंवहीपुरुषबड़भागी। इतउतभोगचाहिजिहिंत्यागी
करनिवासगिरिकंदरमाहीं। परमप्रकाशरूप हरध्याहीं
तिसिध्यानकेआनँदकरके। तिनहिंदृगनतेउदक[2]जुसरके
बैसनिशंकअंकके[3]माँही। अचवहिंविहंग सरतजलताँही
धन्य जनोंकी उमरा ऐसे। परी होत क्षय भाखी जैसे
हम मतिमँद अधन्यकुभागी। मुक्तिमुक्ति बिबते[4]वैरागी
केवलव्यर्थमनोरथसंगा। ममशुभअवधिभवत परिभंगा

---

१ कल्याण. २ जल. ३ गोदमें. ४ दोनों से।

बापीबाग तडागकिनारे। सुंदरमंदिर होहि हमारे॥
[1]सुभ[2]गभामिनीसहतिहिंअंतर। करहिंसुक्रीडाकेलिनिरंतर
असमनराजकौतुकहिंध्यावत असीआयुषापरेबितावत
किंचित संचित भोगमँझारी। परीहोतक्षय वयस हमारी
तिनो समानसुदिवसहमारे कबआवहिंगेहेसमरारे[3]

दोहा।

निजभवहित भवत्यागहित, भो भव[4] मैं तब ध्याउँ
शेष आयु निज कब वयं[5], सुखसों तथा बिहाउँ॥
भरतशतक वैरागको, ऽध्याय चतुर्थो वस्स।
करी शुभेच्छा भरत नृप, ताविन जीवन भस्म॥

दोहा।

अथ पंचम अध्यायमैं, सात श्लोक अनूप।
विधिको[6] देत उलाहने, बहुविध भरथरि भूप॥

श्लोकः।

प्रियसखिविपद्दण्डव्रातप्रपातपरम्पराप-
रिचयचले चिन्ताचक्रे निधाय विधिःख-

---

१ सुन्दरी, २ स्त्रीके साथ, ३ हे शिव, ४ हे शिव, ५ हम, ६ दैवको।

लः। मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्य प्रगल्भ-कुलालवभ्रमयाति मनो नो जानीमः किमत्र विधास्याति ॥ ४८ ॥

कवित्त।

मोमनको अज खल मृदपिंडसम खलु,
करके इकत्र चिंताचक्रपर धरे हैं।
दुःखमाँझ दुःख हो र लाभ साँझ भोर दंड,
जोर कर जोर कर फेरे चल करे हैं ॥
अत्र[1] मित्र वल्लभ प्रगलभ [2]कुलालवत,
कौने विधि करे विधि वैतो घरे घरे हैं।
अहो मैं न जानों भोरा दैव मोते मुख मोरा,
चिंताचिंताविषे मोरा चित्त नित्य जरे है ॥ २ ॥

श्लोकः।

अभिमतमहामानग्रन्थिप्रभेदपटीयसी गुरुतरगुणग्रामाम्भोजस्फुटोज्ज्वलचन्द्रिका

१ यहाँ. २ कुम्हारके जमान.

विपुलविलसल्लज्जावल्लीवितानकुठारिका,
जठरपिठरीदुष्पूरेयं करोति विडम्बनम्॥४९।

पुनः कवित्त।

कुलको जो मान सो महान दृढ ग्रंथि आहि,
ताहिंके प्रभेदनके माहिं स्यानी भारी है।
गुणगण कवीबारीको खिरानवारी शुभ्र,
सोम उजियारी लाजलताको कुहारी[1] है॥
मोक्ष भोगसुखआरी[2] दीनताकलेशक्यारी,
धीरजके दीपको समान व्यारी[3] हारी है।
ऐसी पेटकी पिटारी लाई क्रूर सुखचारी,
पूर पूर सब हारी ठगी विश्व[4] सारी है॥ २॥

श्लोकः।

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरु-
त्कल्पित, व्यालाना पशवस्तृणांकुरभुजः
सृष्टाः स्थलीशायिनः। संसारार्णवलंघ-
नक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां, याम-

१ कुल्हाड़ी. २ काष्ठ फाड़ने का हथियार. ३ वायु. ४ संसार।

न्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं
गुणाः ॥ ५० ॥

कवित्त।

नागोंको अहार ब्यार माटी कीनो सुखचार,
उद्यम न हिंसावार सुख लाभ होय है।
अंकुर तृणादि स्वादु सुधासों प्रसाद पाय,
पशुवृंद अहलाद[1] धार धरा[2] सोय है।
रची नरोंको कुवृत्ति सिद्ध जो न विना वित्त[3],
धनसिद्धता अमित्त गुण नित्त खोय है।
जनोंसों विरोधविधि कर कहा कीनो सिद्ध,
रंडीपूतसम ताहि दंडी नाहिं कोय है ॥ ४ ॥

सोरठा।

भवनिधि तरणमँझार, बली नरनकी तरुण[4] धी[5]।
बिधिना[6] ताहिं अहार, कत उलटी विधि ना कियो॥

श्लोकः।

आधिव्याधिशतैर्वयस्यातितरामारोग्य-

---

१ आनन्द. २ पृथ्वी पर. ३ धन. ४ नवीन. ५ बुद्धि. ६ ब्रह्माने।

मुन्मूल्यते, लक्ष्मीर्यत्रपतन्निवत्त्वविवृतद्वा-
रा इव व्यापदः। जातं जातमवश्यमाशु
विवशं मृत्युः करोत्यात्मसात्, तत्किं
नाम निरंकुशेन विधिना यन्निर्मितं
सुस्थितम् ॥ ८१ ॥

पुनः कवित्त।

आधिव्याधिवृंद रोग ताहींके संयोगकर,
आयुमैं अरोगको वियोग भयो अति है।
पुना रमा[1] जहाँ बसे तातें खगवत[2] नसे,
खुले द्वारेवत धसे विपता महत[3] है ॥
जो जो निरमयो भयो परवशि ताहिं काल,
ततकाल निजवशि अवश करत है।
अज जो अकुँडे कीनों काकी शुभ थिति चीनों,
वेदलोकमतसों न सुखीनको सत है ॥ ८ ॥

श्लोकः।

क्वचिद्वीणानादः क्वचिदपिचहाहेतिरुदितं

---

१ लक्ष्मी. २ पक्षीके समान. ३ बड़ी।

क्वचिद्विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्तकहलः। क्वचिद्रम्या रामा क्वचिदपि जरा-जर्जरतनुर्न जाने संसारः किममृतमय किं विषमयः ॥८२॥

पुनः कवित्त।

बाँसुरीकी ध्वना कहूँ हा[1]हा इति रोना कहूँ,
श्रेष्ठनकी [2]गोष्ठी कहूँ दुष्टता हरति है।
कहूँ अंधधी[3] सुराची[4] महाकटुवाची कहूँ,
रामा[5] अभिरामा रमा[6] मन हरे अति है॥
कहूँ दुष्ट कुष्ठ संग गरे अंग कष्ट सहें।
सदा जलपत[7] रहे जैसे जलपति[8] है।
रचना निरंकुश विरंचि[9]की न जानें हम,
सुधारूप[10] है कि विषरूप ए जगत है॥७॥

श्लोकः।

य संतोषसुखप्रमोदमुदितास्तेषां न भिन्ना

---

१ खेदसूचक अव्यय. २ सभा. ३ अन्धबुद्धि. ४ मद्यप. ५ स्त्री. ६ लक्ष्मी. ७ बका करे. ८ समुद्र ९ ब्रह्माकी. १० अमृतरूप.

मुदो, ये त्वन्ये धनलुब्धसंकुलधिय-स्तेषा न तृष्णा हता। इत्थं कस्य कृते कृतं च विधिना तादृक् पदं संपदां, स्वात्मन्येव समस्तहेममहिमा मेरुर्न मे रोचते॥ ५३॥

पुनः कवित्त।

रुचित सुमेरु मो न आवै काहू काम जो न,
निजगौरतामें सोना सदा गरुतान है।
जीव जे सन्तोष तृपत सदावतर,
ताको शेष[1] न आनन्द रह्यो कछु आन है॥
पुना जेई आन जन धनलोभकर मन,
ब्याकुल हैं जाके ताकी तृषना न हान[2] है।
कौन के निमित्त ऐसी सम्पदा अमित्त रची,
[3]इति विधि करके न विधि[4] बुद्धिमान है॥ ८॥

श्लोकः।

सृजति तावदशेषगुणाकरं, पुरुषरत्नमलं-

---

१ बाकी. २ नष्ट. ३ इससे. ४ ब्रह्माजी।

करणं भुवः। तदनु तत्क्षणभंगि करोति चेदहह कष्टमपण्डिततता विधेः ॥५४॥

पुनः कवित्त।

पुरुषरतन गुणगणको सदन पुनि,
पौरुषको [1]आयतन परमप्रवीन है।
सारी धराको शृंगार जडाजडको शिदार,
मोक्षभोगको भंडार चारु लख लीन है॥
[2]चतुरवदनको चतुर हम चीनो तब,
प्रथम जो ऐसे नर को [3]तपत कीन है।
ताके पाछे ततक्षण नष्ट करे हा हा कष्ट,
इत विधि विधिनाको पंडित न चीन है॥९॥

दोहा।

भरतशतक वैरागको,—ऽध्याय पंचमो अंत
दोष अरोप विरंचिको, हरि दयालु वरणंत।

दोहा।

षष्ठे श्रेष्ठजनानकी, वर्णन करें प्रशंस।
शुभश्लोक सत्रा तिसे, हृदयकमलको हंस[4]॥१॥

---

१ स्थान। २ ब्रह्माजी को। ३ उत्पन्न किया। ४ सूर्य।

श्लोकः।

रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये श्राव्यं न गेयादिकं, किंवा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीतये। किन्तूद्भ्रान्तपतत्पतंग-पवनव्यालोलदीपंकुरच्छायाचञ्चलमा-कलय्यसकलं सन्तो वनान्तं गताः॥५५॥

छप्पय।

गये संत बनमाहिं नाहिं को[1] जंतु जाहि माहिं।
वसनहेतु क्या धाम[2] तलो, [3]अभिराम हुतो नहिं॥
श्रवणयोग्य गीतादि कहां थो ताबियोग दुख।
कै न अधिकरुचिहेतु प्राणसम मित्रसंगसुख॥
ते हुते सर्वपर तिहँ तजे, दीप[4]शिखावत तरल[5] पिख
यत भ्रमतो पतत[6]पतगके,पंख पवनकर चपल शिखर

श्लोकः।

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं, किं लोभाय मनस्विनः। शफरीस्फुरितेनाब्धेः, क्षुब्धता जातु जायते॥५६॥

---

१ कोई। २ घर। ३ सुन्दर। ४ दीपक की ज्योति के समान। ५ चंचल
६ कीट विशेष।

पुनः वही सवैया।

यहि मंडलमात्र [१]प्रपंच सबी, [२]तत्ववेतनको कत कारण छोभा।
जिमि सागरमै मछरी मछगी, उछरे मछरी कछु होत सुलोभा॥
तिमिनैकलुभायसकेनतिसे, चणचीणलखीतिनलोक की शोभा।
[३]शुकतीज्ञभ्रमातनरूपोमृषा[४],ततवेतनकोनतथातिहिं चोभा॥३॥

श्लोकः।

सखे धन्याःकेचित् त्रुटितभवबन्धव्यतिकरा, वनान्ते चित्तान्तर्विषमविषयाशीविषगताः। शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवलगगनाभोगसुभगां, नयन्ते ये रात्रिं सुकृतचयचित्तैकशरणाः॥ ५७॥

पुनः सवैया।

नितपुण्यपरायण जाँचतकेवल ताँभयबंधहन्यो गनहै।
गन [५]पन्नगक्रूरमँझारअहंविष[६]मूल सने जु तिने हनहै॥
वरशारदचंद्रकी चाँदनीसोंयहिब्योमतलोउजलोवनहै।
वस [७]जोबनमें असरैन बितावत जोबनमैं जन सोधनहै।

---

१ संसार. २ तत्ववेत्ताओं को. ३ सीपी को जानने वाले को. ४ झूँठ. ६ अहंकार रूप विष. ७ युवावस्था में।

श्लोकः।

महीं रम्या शय्या विपुलमुपधानंभुजलता, वितानंचाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमानिलः। स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासंगमुदितः, सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव॥ ५८॥

पुनः सवैया।

[१]शुचि[२]चारुघनीछिति[३]सेजबनी मृदुद्दै भुजबेलविशालसिरानो।
सियरो गतिमंदसुगंधबहेयहिबात अहै व्यजनोख[४]वि[५]तानो॥
विधु[६] दीपलसे तपतादि असेशुद्धबुद्धि बधू[७]मिलमोद[८]महानो।
मुनिशांतस्वरूपअनूपविभूति[९]सों भूपति के सम सोवतमानो॥५॥

श्लोकः।

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः, किंवा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरःकोऽपि किम्। इत्युत्पन्नविकल्प-

---

१ पवित्र. २ सुन्दर, ३ पृथ्वी. ४ आकाश. ५ छत. चांदनी. ६ चन्द्र. ७ स्त्री. ८ आनन्द. ९ ऐश्वर्य से।

जल्पमुखरैः संभाष्यमाणा जनैर्न क्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥५९॥

पुनिः कवित्त।

कहा ए चंडाल जात भगमो द्विजाति किधों,
कैधों कोऊ शूद्र है कि चोर वा तपेश[१] है।
तत्त्वके प्रवेश मैं प्रवीन मतिमान उत,
उत्तम योगेश को न चीनें कौन वेष है॥
इतिविधि कर जो संभाषमाण जननके,
मुखोंकर संभव विकल्प[२] अशेष है।
सुनें गुनें मुनि ताहिं वर शाप देत नाहिं,
जाहिं सुखी पंथमाहिं जैसे [३]नक्षत्रेश है ॥६॥

श्लाकः।

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं, काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथा मूकभावः परेषाम् ।तृष्णास्रोतोवि-

१ तपस्वी। २ भेद। ३ चन्द्र।

भँगो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा,
सामान्यःसर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिःश्रेय-
सामेष पन्था: ॥ ६० ॥

पुनः कवित्त ।

हिंसा नाहिं करे परद्रव्यको न हरे सत्य,
वचन उचरे पुण्य समे पुण्य कर है ।
[१]यथावित्त कथा[२] परनारों की न भनें सुनें,
ताके गुंग बोला बने भोलासम चर है ॥
तृष्णाको प्रवाहभंग गुरोंविषे नम्र अंग,
मित्रभाव सभसंग करे हर हर है ।
गायो सबग्रंथनमें सत ऐसे पंथन[३] मैं,
राग द्वेष मोख[४] चरे जैसे दिनकर[५] है ॥७॥

श्लोकः ।

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्ष्य-
मक्षय्यमन्नं, विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकम-
पमलं तल्पमस्वल्पमुर्वी । येषां निःसंग-
तांगीकरणपरिणतिः स्वात्मसंतोषिणस्ते,

१ धन के अनुसार । २ बातचीत । ३ मार्गों में । ४ मिटाके । ५ सूर्य ।

धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः निर्मूलयन्ति ॥६१॥

पुनः कवित्त।

[1]पाणिपात्रपै पवित्र भिक्षा अन्न अक्षै चित्र,
द्वारे द्वारे भ्रमे मिले गिले निरदोष है।
दशोदिशा चैल[2] विसतीरण अमैल पुनि,
तलप[3] अनंता[4] की अनंत सुखघोष[5] है॥
करमाको मूल मूलाविद्या निरमूल जाकी,
दीनता निवारी सारी स्वातम संतोष है।
भेदाभेद भ्रम भागो ब्रह्मवित [6]वीतरागो,
मान अपमानते न उदे मोद[7] रोष है॥ ८॥

श्लोकः।

कौपीनं शतखण्डजर्जरतरं कन्थापुन-स्तादृशी निश्चिन्तंसुखसाध्यभैक्ष्यमशनं शय्या श्मशाने वने। मित्रामित्रसमानतातिविमला चिन्ताऽथ शून्यालये,

१ हातरूप पात्रसे. २ वस्त्र. ३ शय्या. ४ पृथ्वी की. ५ सुखसमुद्र. ६ रागरहित. ७ आनन्द।

ध्वस्ताशेषमदप्रमादमुदितो योगी सुखं तिष्ठति ॥ ६२ ॥

पुनः गीयामालती छंद ।

शतखंडक्षीण कुपीन जाँकी तासुसम जिहिं गोदरी ।
सुखसाध्यभिक्षा हार शय्या वन मसाने गिरिदरी[1] ॥
विख शत्रु मित्र समान सुख द्युति शून्यसदनोंमें सदा
निर्मल निजातमको भजें सुस्वरूपते जन सर्वदा ॥ ९

दोहा ।

चरहिं स्वतंत्र निरंकुशो, [2]सप्रमाद मद[3] नष्ट ।
अधिष्ठान सुप्रबोध कर, कल्पित नष्ट समष्ट ॥

श्लोकः ।

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वता तात तादृङ्नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवर्त्मागतो वा । योऽयं धत्ते विषयकरिणीगाढरूढाभिमानः, क्षीवस्यान्तःकरणकरिणः संयमालानलीलाम् ॥ ६३ ॥

---

१ पर्वत की कन्दरा, २ प्रमादसहित. ३ गर्व ।

पुनः ललित छन्द।

तीन भुवनमय सर्व सरगको[1] आसमंत मैं ढूँढ्यो ताता॥
कहूँ न देखा सुना कहूँ नहिं ऐसोजनजोजन्यो विधाता॥
जनकोअंतःकरण[2] करीसमविषय रूप[3] करिणी मिलराता
संयम[4] संगलातिहिंपगमैंजिहिंडाऱ्योलीलाकर[5] भोभ्राता

दोहा।

सुषुपतिवत जाग्रतविषे,तजे[6] त्रिधा जिहिं भोग॥
ऐसो इंद्रियजीत जन,कोइक सुस्थित होग॥१२॥

श्लोकः।

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं त-
रूणां त्वचः,सारंगाःसुहृदोननु क्षितिरुहां
वृत्तिःफलैःकोमलैः।येषां नैर्झरमम्बुपान-
मुचितंरम्भेव विद्याङ्गना,मन्ये ते परमेश्व-
राः शिरसि यैर्बद्धो न सेवाञ्जलिः॥६४॥

---

१ चारों तरफ, २ हाथीके समान, ३ हथिनी, ४ संयमरूप सांकर, ५ हे भाई, ६ कायिक, वाचिक, मानसिक अथवा तामस, राजस, सात्विक किंवा स्वेच्छ, परेच्छ इत्यादि तीनों प्रकार के।

नील छन्द ।

शैलशिला [1]सिहजा गिरिकन्दर मन्दिर हैं ।
वृक्षनके छिलके [2]पट वा [3]दिगअंबर है ॥
मित्र [4]कुरंगसमूह सही तिनसंग चरे ।
कोमल पुण्यफलीन फलोंकर प्राण धरे ॥१३॥
शीतल स्वेच्छित स्वच्छ सुगंधित मिष्ट घना ।
उचित अंबु[5] गिरिंदनको [6]अचते जु जना ॥
ब्रह्मविचारवती सुमती युवतीको सदा ।
धार हृदेमहिं मोद लहैं न तजें सु [7]कदा ॥१४॥
जो निजप्राणन त्राणके कारण [8]पाणि [9]बिखे ।
जोरनमों शिरसों न करें कहुँ अग्र कबे ॥
जो [10]इतिरीति [11]पुमान विराजत लोकविखे ।
मानत ता परमेश्वर मैं सुन जीव सखे ॥१५॥

श्लोकः ।

क्वचिद्भूमौशय्याक्वचिदपि च पर्यङ्कश-
यनं,क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शा-
ल्योदनरुचिः। क्वचित्कन्थाधारी क्वचि-

---

१ बिछौना, २ वस्त्र, ३ नग्न, ४ मृगोंका झुंड, ५ जल, ६ पीते, ७ कभीभी, ८ हाथ, ९ दोनों, १० इस रीतिसे, ११ पुरुष ।

दपि च दिव्याम्बरधरो, मनस्वी कार्यार्थी.
न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥९५॥

कवित्त।

कभी भूमिआसन सिंहासनपै वास कभी,
कभी मिस[1] ग्रास कभी विंजन अहार है।
कभी [2]शतखंडवती गोदरीको ओढ़े जती,
कंबरको कबहूँ दिगंबरको धार है॥
कभी भानुकर तपे कभी शीश छत्र दिपे,
कहूँ सतकार होत कहूँ त्रिसकार[3] है।
तदपि न संतजन सुखी दुखी होत मन,
आतमा असंग लखे देहको विहार है॥ ९६॥

दोहा।

क्रिया[4] स्वप्न प्रतिबिंबते, बिंब प्रबुद्ध अरंग।
तथा त्रिधाकृत कालत्रय, जीवनमुक्त असंग॥

---

१ शाक. २ सैकड़ों चीथड़ों वाली. ३ अनादर. ४ जैसे लोभ, भय, कम्प आदि स्वप्नकी क्रियाओं से प्रबुद्ध (जागे हुए) पुरुष का कोई सम्बन्ध नहीं, और जैसे प्रतिबिम्बगत नाना रंगों से बिम्बका रंग नहीं बदलता वैसे ही त्रिधाकृत अर्थात् शुक्ल, कृष्ण, अशुक्लाकृष्ण इन त्रिविध कर्मों से अथवा भूत, भविष्य वर्तमान इन तीनों क्रियाओं से किंवा सात्विक, राजस, तामस यद्वा कायिक, वाचिक, मानसिक क्रियाओं से जीवन्मुक्त पुरुष सदैव संगरहित है।

भिक्षाशी जनमध्यसंगरहितः स्वायत्तचेष्टः सदा, दानादानविरक्तमार्गनिरतः कश्चित्तपस्वी स्थितः। रथ्याक्षीणविशीर्णजीर्णवसनैः संप्राप्तकन्थासखो, निर्मानो निरहंकृतिः शमसुखाभोगैकबद्धस्पृहः ।

पुनः कवित्त।

जाच जाच अन्न खातो आन देन लेन घातो,
नीचजन संग हातो स्वतै आतो जातो है।
विचरे अलग मगमाहिं नाहिं जग माहिं,
काहूसों विरोध नातो बोधसिंधु नातो है॥
गली गली माहिं बीन गली गली टली लीन,
ताको कंथा सीता पीन खीन सीता बातो है।
अहंकृति वृत्ति रातो नाहिं निरमान गातो,
जाको मनमीन ब्रह्मानंद सिंधु मातो है॥ १७॥

दोहा।

चितसों[१] मिल चितसो भयो, जिहँ चित तज निजबान
अस जीवनमुक्क्के पुरुष, नहिं मुक्ते जग जान॥ ११

१ जिसका चित्त चेतनसे मिलकर, अपनी वृत्तियों को त्याग चेतन के समान होगया है, ऐसे जीवन्मुक्त पुरुष संसार में बहुत से नहीं हैं।

श्लोकः।

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णा-
तरंगाकुला, रागग्राहवती वितर्कविहगा
धैर्यद्रुमध्वंसिनी। मोहावर्त्तसुदुस्तराऽति-
गहना प्रोत्तुंगचिन्तातटी तस्याः
पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति
योगीश्वराः॥ ६७॥

पुनः कवित्त।

आशानाम [1]सरी [2]मनोराजनीरभरी करी,
तृषणातरंगो खरी व्याकुली गंभीर है।
धीरजको तरुहारी बुद्धि नावको निवारी,
[3]भवसिंधुगतिवारी विपता समीर[4] है॥
मदनादि खगभीर राग द्वेष ग्राह गीर,
मोहचक्र याको नीर जारे बांको सीर है।

१ नदी, २ मनोरथरूप जल जिसमें भरा है, ३ संसाररूप समुद्र में जानेवाली, ४ पवन।

ऊची चितातटी जाते तरनी कठिन ताते,
भोगी तामैं बहैं योगी बहैं पार तीर है ॥ २० ॥

सोरठा।

सुखस्वरूप ते साधु, निकल गए तिहिं सरितमो[१]।
आशानदी अगाध, निकल लए नन इतर[२] गया ॥२१

श्लोकः।

नभिक्षादुष्प्रापापथिपथिमठारामसरिताः
फलैः संपूर्णाभूर्विटपिमृगचर्मापिवसनम्।
सुखेवादुःखेवासदृशपरिपाकः खलुतदा,
त्रिनेत्रं कस्त्यक्त्वा धनलवमदान्धं
प्रणमति ॥ ६८ ॥

पुनः नारच छंद।

पथे[३] पथे न भीख कष्टसाथ हाथपै परे।
मठे मसान बाग कि युगांतआगसौं जरे ॥
समूह भूमिपै फली फलें कहा न दें फलें।
मृगानके मृगान[४] किं न शीतवातको दलें ॥२२॥

---

१ नदीमें, २ अन्य, ३ गली में ४ मृगछाले।

इसो समाज आजलौं विराजमान है सभी।
इने हुते त्रिनेत्रको महानधी[1] तजे कभी ॥
पुना कबे भजे धनं कणी मदांधजंतुको।
बसे इने वने भजे निजातमा अनंतशो ॥ २३ ॥
समान पापपुण्यके विपाक दुःखसुक्खको।
लखे चरे बनें न राग द्वेष यों विदुःखको ॥
इसे पुमानलोकमैं [2]अशोक कोइके कहूँ।
विलोक[3] हैं अनेकको जु ब्रह्मरूप एक हूँ ॥ २४ ॥

श्लोकः।

महादेवो देवः सरिदपि च सैवामरसरित,
गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः।
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रतमिदं
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता ॥ ६९ ॥

पुनः कवित्त।

देव एक महादेव नदी देवनदी सैव[4],

१ महाबुद्धिमान्, २ शोकरहित, ३ देखते हैं, ४ वही।

गिरिगुहा धाम एव [1]चीर दिशा चार हैं।
एह काल मित्र नीको ब्रत निरदीनताको,
संग बुद्धि [2]युवतीको प्रिय बटडार हैं॥
[3]सुता निरवैरता कुमार ब्रह्मको बिचार,
और कहा भनौं याको बन्यो या अचार है।
ऐसे सदाचार वरिवार कर जोऊ नर,
सदा [4]परवार्यो सदा ताहिको जुहार है॥ २५॥

श्लोकः।

भिक्षाहारमदैन्यमप्रतिहतं भीतिच्छिदं सर्वदा, दुर्मात्सर्यमदाभिमानमथनं दुःखौघविध्वंसनम्। सर्वत्रान्वहमप्रयत्नसुलभं साधुप्रियं पावनं, शम्भोः सत्रमवार्यमक्षयनिधिं शंसन्ति योगीश्वराः॥ ७०॥

पुनिः कवित्त।

भिक्षा हर्‍यो अन्न गुणगणों के संपन्न,
अक्षै निधि अयतन लाभ दीनता अभाव है।

---

१ वस्त्र, २ बुद्धि रूप तरुण स्त्री को, ३ कन्या, ४ घिरा हुआ।

दुरमतसर त्रास मद अभिमान आश,
हने दुःखराशिसने जने शांति भाव है।
नाहिं प्रतिहत है सकलकाल सत[1] है॥
अखिल[2] दशगत है महेशयज्ञ गाव है।
हिंसा बाध निरोपाध भनत प्रशंसा साधु,
मुख्य मोक्षसाधनमों साधनको भाव है॥ २६॥

दोहा।

शमदमादि के पुष्टिहित, गर्वहतार्थ समीत।
गहे सिद्ध परमार्थहित, भिक्षाअन्न अतीत॥२७॥

श्लोकः।

पाणिं पात्रयतां निसर्गशुचिना भैक्ष्येण संतुष्यतां, यत्र क्वापि निषीदतां बहुतृणं विश्वं मुहुःपश्यताम्। अत्यागेऽपि तनोरखण्डपरमानन्दावबोधस्पृहां, मर्त्यःकोऽपि शिवप्रसादसुलभां संपत्स्यते योगिनाम् ११

पुनः कवित्त।

परे [3]पाणिपात्रपै स्वभाविक पवित्र भिक्षा,

---

१ सत्य, २ सर्वव्यापी, ३ हाथरूप बर्तन में।

तासों प्राणरच्छा करे जहाँ चहे बहे हैं।
बारबार विश्वको निहार तृणभारवत,
करे त्रिसकार सदाचारमाहिं रहे हैं॥
तनके अत्यागलग शुभमग लग रहे,
दहे जीवभाव को स्वभाव ब्रह्म गहे हैं।
ऐसी दैवी संपदा न लहे दैवदयाविन,
ईशकृपाते अनीश निजरूप लहे हैं॥ २८॥

श्लोकः।

स्थितिः पुण्यारण्ये सह परिचयो हन्त हरिणैः, फलैर्मेध्या वृत्तिः प्रतिनदि च तल्पानि दृषदः। इदीयं सामग्री भवति हरभक्तिं स्पृहयतां, वनं वा गेहं वा सदृशमुपशान्तैकमनसाम्॥ ७२॥

पुनः कवित्त।

शुचि वनोंके निवासी मृगोंसंग हाँसी खेल,
मेल सदादासीको न मेध[1] फल आशी हैं।
कभी प्रति नदी तट कभी श्मशाने मठ,

---

१ पवित्र फलों का भोजन करने वाले।

कवहूँ पखान बट तरुतरे वासी हैं ॥
केवल प्रसन्नमन तुल्य आयतन[1] वन,
तदपि एकांत घनवासी सुखराशी हैं ।
ईशके उपासी की प्रकाशी या विभूति ताहि,
गावें सुनें ध्यावें नाहिं पावें यम [2]पासी हैं ॥२९॥

दोहा ।

भरतशतकवैरागको, इति षष्ठो अध्याय ।
सुजनोंके गुणगण भने, हरीघाल शिर नाय॥६॥

दोहा ।

[3]सतें तीन [4]भूपानसों, भयो पृथक् संवाद ।
तिनें शलोक भने तिनें, हनें मोह गर्वाद ॥१॥

सोरठा ।

विन रुचि कहूँ नरेंद्र, दीन भरत प्रति भोग कछु ॥
तत अलीन नाथेंद्र, तीन हेतु कर चीन अप ॥२॥
राज अंश सम रक्त, भोग योग न विरक्त को ॥
दानरक्त विन भक्ति, तव मम सम पद [5]हेतुत्रय॥३॥

---

१ घर. २ यमराजकी फांसी, ३ सातवें अध्याय में, ४ राजाओं से,
५ तीन कारणों से ।

श्लोकः ।

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमा-
नोन्नताः, ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो
दिक्षु प्रतन्वन्ति नः । इत्थं मानद
नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं, यद्यस्मासु
पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निस्पृ-
हाः ॥ ७३ ॥

दोहा ।

त्वं राजा राजा अहं, अधिक भेद कछु नाहिं ।
तुमू चतुर्विध[1] चमूकर, करो गर्व मनमाहिं ॥४॥
मन बुधि चित्त [2]अहं [3]चतुर, सेना प्रबल प्रवीन ॥
लब्ध गुरोंकी सेवकर, हम उन्नत इत पीन[4] ॥५॥
बहुप्रकारके धनोंकर, तुम प्रसिद्ध जगमाहिं ॥
हम निज निर्मलगुणोंकर, प्रगट दशोंदिशि आहिं६
बीच पुस्तकों कविजनों, गाये हमरो गीत ॥
भो भूपति संसार मैं, मैं प्रसिद्ध इतिरीत ॥७॥

---

१ चार प्रकारकी फौज का, २ अहंकार, ३ इन चारों की, ४ पुष्ट ।

भूके कोटि विभाग कर, कपालवांश तिहिं पाय।
ताकर त्वं[1] उन्नत भयो, रुचि विहीन दर्शाय ॥८॥
बोध [2]निजातमराज कर, हम गर्वत उरमाहिं॥
नाहिं करें हत चाहि तव, हे मानद नरनाह ॥९॥
ईश्वरअंश अतिथी लख, मानहानि अघ होग॥
हमकरतुमइत्तात्रितयविध, मानदानके योग ॥१०॥

सोरठा।

याचकादिकर भूप, मानदानके योग्य तुम।
त्यों हमते तव ऊप, होत न समता भावते ॥११॥

दोहा।

किंचित तव मम सामता[3], वाह्यगुणोंकर चीन।
राजांतरमों अंतरो, हम [4]अदीन तुम दीन ॥१२॥
यथालाभ[5] सन्तुष्ट हम, निजानंदमों लीन।
इतउतके सुखसों अहित, याविधि अहं [4]अदीन १३
मदन[6] मदादि क्लेश, शोक लोकपरलोक के।
ताकर दुखी हमेश, त्वं नरेश है दीन इमि ॥१४॥

---

१ तू. २ अपने आत्मज्ञानरूप राज्य से, ३ बराबरी, ४ दीनतारहित, ५ जो कुछ मिलजाय उसीसे राजी, ६ काम।

जग जीवन दिन चार, तज मद स्वेच्छित संचरो ॥
संभजन हरिअवतार,करो मित्रता [1]सर्वसह ॥१५॥

दोहा।

गहे पाद योगीश के नमो दंडइव कीन ॥
आयसु पाय स्वदेश नृप,गयो मुदित[3] मदहीन।१७॥
वचन नाथके धार उर, डार गर्व संताप ॥
भूप अभय विचरत भयो,वृथा न साधुमिलाप ॥१७॥
अमृतवचनकी वृष्टि कर, कृपादृष्टि के साथ ॥
गर्वताप नरनाथको, हन्यो नाथके नाथ ॥ १८ ॥

पुनः दोहा।

श्रीहरिभरत यतींद्रप्रति, अमुक नरेंद्रोवाच ॥
चिंतामणिसम राज तज,कत दरिद्रमों राच ॥ १९ ॥
सम मुदिता निर्दीनता, निर्भयसहित विचार ॥
कीर्ती करत दरिद्रकी, तामति भरत उदार ॥ २० ॥

श्लोकः।

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या,
सममिह परितोषो निर्विशेषावशेषः।

---

१ सबके साथ. २ आज्ञा. ३ आनन्दित।

स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः

चौपाई।

वल्कलकरहुलास है हमको। बहुलक्ष्मीकर मोदसु तुमको
मैं प्रसन्न सक्तू[1] शागादहिं। त्वंप्रसीद बहुविंजनस्वादहिं
[2]वयंहर्षक्षितिशिलाशयनकर [3]यूयंतुष्टद्वि[4]रदरदखटपर
शांतित्रिणापुत मम संतोषा। सुंदरनारिनकर तव पोषा
नृपतितृप्तितायोजनग्रामहिं किंचिततारतम्य[5]नहिंतामहिं
पुनःदरिद्रीभवतु[6]वहीनर। हृदयजासुसुप्रकाशआशातर
भूपति चित्त प्रतुष्टे जबहीं। को धनवंत रंकको तबहीं
मो मनअब संतुष्टभयो अति। नाहिंदरिद्रीधनीनिहारति
भेदभाव सगरो अब नाश्यो। एक ब्रह्म उरमाहिंप्रकाश्यो
परमानंद ब्रह्ममैं जोरा। परमानंद भयो मन मोरा २५
ब्रह्माकार भयो मन जाते। ब्रह्माकार लखे [7]भवताते॥
तुम जु कह्योनृपमोंहिं दरिद्री। कवनयुक्ति इनमैंतुमअद्री

---

१ सत्तू. २ हम. ३ तुम. ४ हाथी दांत के पलङ्ग पर. ५ बराबर.
६ होता है. ७ संसार.

देख दिगंबर काय विवर्णा। मोहिं दरिद्री तोहिं जु वर्णा
देकर ताते अधिक समाजा। लियो दरिद्र मोलमैं राजा
जासुप्रतापनिजातमशोधा। भये [1]निरस्तसमस्तविरोधा
जा समयाकर हे नरराई। मैं अब सिद्धअवस्था पाई
[2]अविलोकों मैं लोक सबाया। मोहिंन हेरतको क्षितिराया
द्विधाप्रकार दरिद्र बखाना। एक सतोमय तममय आना
मनकर तनकरभोगअसंग्रह। यहि वरिष्ठ[3]दारिद्र मोरगृह
हरिगुरुभक्तिकृपादित्याग जहँ। सोकनिष्ठ[4]दारिद्रतोरमहँ
चाहिआहिमनमाहिंजाहिंअति। सोपिदरिद्री तुमवत नरपति
तुच्छसदुःख विनाशी संपत। पाय वृथा नृप त्वंकृतगर्वत

दोहा।

मौन धरो निज भौनको, करो गौन भूपाल।
तृष्णा चित्त विशाल जिहिं, वही परम कंगाल॥३२॥
[5]ज्यों रवि मास निशांतमैं, शांति अवश उतपन्न।

---

१ दूर. २ नहीं देखता. ३ बड़ा. ४ छोटा. ५ जैसे सूर्य सम्पूर्ण राशि को भोग, अन्तिम रात्रि में शान्त अर्थात् उसके भोग से उपराम को प्राप्त हो जाता है, अथवा जैसे पूर्णमासी की रात्रि के अन्त में चन्द्र के प्रभाव से शान्तसा होजाता है, वैसे ही राजा हृदय में भर्तृहरि के वचनों को धारण कर ज्ञान सम्पन्न होगया।

त्यों नृप उर धर भरतरव, भयो ज्ञानसम्पन्न ॥३३॥
अतिवर्षा जल भरतरव, नृप उर ऊषर गाय ॥
तायुत तिहिं चित जलज[1] भव, गयो नमो कररा य३४

पुनः दोहा।

मम [2]आयन पावन करो, [3]पावन-पावन-पाय ॥
वक्ता नृपवत राज निज, निर्भय ताप्रति गाय॥३५॥

श्लोकः।

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामीश्महे यावदित्थं, शूरस्त्वं वाग्मिदर्पज्वरशमनविधावक्षयं पाटवं नः। सेवन्ते त्वां धनान्धा मतिमलहतये मामपि श्रोतुकामाः, मय्यप्यास्था न चेत्तत्त्वयि मम सुतरामेष राजन् गतोऽस्मि ॥ ७५ ॥

कवित्त।

विभवों के ईश तुम [4]वागम के ईश हम,
भूपति [5]भवान शूर बीर हम अति हैं।

---

१ कमलरूप ज्ञान, २ स्थान, ३ पवित्र को भी पवित्र करने वाले, ४ वाणी के ईश, ५ आप।

परप्राणीमाहिं मद ताप तासु नाशिवेको,
मम गिरा चल चतुराईको धरति है ॥
सेवत धनांधे तोकों पूजन हैं श्रोते मोकों,
मतिम[1]लहतहेतु लेते मोते मति हैं।
रावरो हमारो राज गुणाक समाजसम,
अंत[2]रके राजमाहिं अंतरो महति है ॥३६॥

टीका चौपाई।

राजन तुम पृथिवीपतिराजे। हम राजे त्रिभुवनकेसाजे
लाजें तुम्हरे धाम विराजें। देख दोष बहु ताते भाजे॥
बुद्धबेलिके हरनेहारी। अंश तुम्हारी कठिन कुठारी॥
छल[3]दमैलमूत्रादित्यागसम। तजेपदारथनाहिंग्रहेंहम
हमनिसप्रेहीचराहिंस्व[4]तंतर।दुसहदुःखममसुखपरतं[5]तर
मैंआनंदीनिजानंदकर। विषयभोगसुखकेतुमकिंकर[6]
करोदंडतुमदुष्टजनाको। सहिनसकोंमैंदुःखसोताको॥
तुमडाटोतिहिंमुक्तिचहेंहम तवममसंगतितुल्यतेज[7]सम
महत[8]राजवारेहमराजन। स्वल्पराजतवसोममकाजन

१ बुद्धि का दोष हरने के लिये. २ आत्माराज्यमें. ३ वमन. ४ स्वतंत्र.
५ परतंत्र. ६ दास. ७ प्रकाश और अन्धकारके समान. ८ बड़े.

तुम्हरे सदन [1]सदौरप पौरे। सहि न सकों मैं वायक कौरे
तवनिकेत [2]इत्यादिकदूषण। सो ममयोग्य नमोभूभूषण
नमो मात्र जोभूप तिहारी। हमताके भी नहिंअधिकारी
तव आलय तन पाले लाजें। जाते हम तुम दोनों राजें॥
ताते हमरे तुमरे माहिं। हे नृप अधिक अंतरो नाहिं
राजांतरमोआहि विषमता। बाह्यराजगुणकीकछुसमता
[3]असुरी संपत्के पति तुमहूं। [4]सुरी संपदाके प्रभुहमहूँ॥
तुम स्वदेशके अर्थोंके पति। रंक धनीकी करो विषमगति
हमवाणीपतिनिजवाणीकर। करहिंतारतमतुम समनरवर
निज [5]प्रजारिके [6]अरितुमवीरा। बलविख्यातरावरोवीरा
निजविभागके हरणे काजा। रक्षक तुम लोकनके राजा
बाहिर धनके हरता तस्कर। ताके दंडक तुम भूपतिवर॥
अरतवमनदुश्मनतव अंतर। तुम्हरे बलको हरत निरंतर
ब्रह्म सच्चिदानंद रूपतव। ढाँप लियो तिहिंयथा [7]अभ्ररवि
[8]मृषा अचेतनदुःखरूपतन। अर परिणामीविपताबासन

---

१ द्वारपाल सहित. २ स्थान में. ३ राक्षसी. ४ दैवी. ५ दूर करके.
६ शत्रु. ७ मेघ. ८ झूँठ.

तामैंअहंभावतवकीनो।नखशिखाग्रलौंनिजवपुचीनो
अंज असंगलौं धर्म तुम्हारे।चित्तशत्रु ते ढापे सारे४९
जन्ममरणलौं तनके कर्मा।चीनें तुम अपने परधर्मा ॥
निजानंदते तुमको तोरे।नीच विषयसुखबीच मुजोरे
कामक्रोधलोभादिरूपधारि।[1]नटवतमोहे तुमको [2]मन अरि
तुम्हरेसुखको[3]अहनिशिकाटे।सतपथते[4] तुमको नितडाटे॥
कीन दीनते दीन तुमहिं मन।जन्मजन्मकोमनतवदुशमन
तवआश्रयबलपायतिहारो।हर्‍योसर्बमन तेजतुम्हारो
तुम्हरेबलको जबमनधारे।तवेशुभाशुभपंथपधारे ॥
तबबलकृतेकितेनासिधारे।जडस्वभावते बाणप्रकारे॥
जबलगतुम्हारोमन अरिजीता।तब लग[5]लवसुखलहोनमीता॥
जब तुमचित्तशत्रु निजजीता।तबमोसमतुमचरो[6]अभीता
[7]मनरिपुजीतासब रिपुजीते।मनरिपुजीतासब रिपुजीते ॥
इतरमनोंमैंहोइननिग्रह।मानसको विनमानसनिग्रह
तातेस्वांतरमन वशिकीजे।निर्भयपद शूरनकालीजे

१ नटके समान. २ मनरूप शत्रुने. ३ रातदिन. ४ सुमार्गसे. ५रंचाक. ६ निर्भय. ७ यदि मनरूपशत्रु जीवित है तो सब शत्रु जीवित हैं और जितने उसको जीता उसने सब शत्रु जीत लिये।

मदनमदादिशत्रुभक्ताके। हरहिंमोक्षसुखअरिहमताँके
वायकसायककरतिहिंहनके शमदमादिजनकेमनजनके
त्रिधा तापतेताकोराखहिं। तेनिजज्ञानपायमैनाखहिं॥
भूपपुनासमसूर[१]शूरहम। गिरा[२]किरणाकरहरहिंजुभ्रम[३]तम॥
रागद्वेषकोमदज्वरभारी। ताकर जरत सर्व तनधारी॥
मम वचनौषधिको जन जबहीं। संयमसंयुत सेवहिंकबहीं॥
हेतुसमेत प्रहार ताप सब। लहत निरतिशयनिजानंदतब॥
अरुतृष्णाकर बौरेजे नर। गहें मानविन धनकणिका खर[४]॥
तन पोषत योषित[५]भोगार्थ। ते न लखहिं पशुवत[६] परमार्थ॥
अस पामर तव सेवत राजन। सेवहिं मोहिं मोक्ष के भाजन॥
निजमतिकीमलहतिकेकाजा। सुनतेवचनसरुचि[७] ममराजा॥
अरु सह कामी भोग निमित्ता। अरचहिं मोहिं जबे इक चित्ता॥
प्रगटे जे तिहिं पुण्य विशेषा। तेरि तजहिंनिज निखिल[८] कलेशा।
सुखदसुखेनशीघ्रबहुभोगा। करेगिराममताजनयोगा॥
चपलचित्तमहिवचानबसहिमम। करहिंतिसेतव्रअचल[९]अचलसम॥

---

१ सूर्य के समान. २ वाणीरूप किरणों से. ३ भ्रमरूप अन्धकारको. ४ गधा. ५ स्त्री संभोग के लिये. ६ पशुओं के समान. ७ प्रीतिसहित. ८ समस्त. ९ पर्वत के समान.

अचल निजातम सुख भुक्तावत। भोक्ता चित्त अचल तापावत॥
ब्रह्माकारभयो मनजाते। भोग्योगयो आप खलुताते॥
पूरबचपलरूपनिजखोयो। चित[1]सों मिलचित[2]चित[3]सोंहोयो॥
चिताचेतना[4]मसजातीजाते। भवतअभेदउभयाचितताते
अचलनिजातमसुखकीदानी तातेअचलचतुरममवानी
जहाँ संचरे गिरा हमारी। करेतिसेतबनिजअनुसारी॥
ताते वाक्य हमारेराजन। जनश्रद्धालूकेअतिसाजन॥
ममवचनोंपरतवश्रद्धाजब। धरोतबैउरतापहरोसब॥
सर्वजनोंकेहितकी कीजै। निर्भयदानसकलकोदीजै॥
यशकोतिलकधारजगजीजे। मानसदेहसफलकरलीजे

दोहा।

हरहु दुःखी दुःखको, सुखियेको सुख देह।
धरो शिरोमणि वचन मम, रमो नरो मणिगेह॥
मान हान भूपानको, कीन सप्तमेऽध्याय।
अनुज[5] वृद्ध भ्रातानके, धस्यो मध्यमोऽध्याय॥

---

१ चैतन्यसे. २ मन. ३ चैतन्यसा. ४ नाम की समानता. ५ सब अध्यायों से विचरित श्लोका सातवां अध्याय.

दोहा।

अष्टे[1] अष्ट श्लोककर, नृपन गर्व संताप।
अमृतवचनचूरणसहित, चूरण करहिं कलाप ॥१॥

श्लोकः।

विमलहृदयैर्धन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा, विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा। इह हि भुवनान्यन्ये वीराश्चतुर्दश भुञ्जते कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष मदज्वरः ॥ ७६ ॥

चौपाई।

कछुकपुरनकोहोकरराजा।यामदज्वरनरकरतअकाजा
विमलचित्तजनकेंचितधने[2]।पूर्वसुजगतजिनहुँनेजने
[3]कमलासनतेआदिमहावर।गर्वकरहिंबानहैनक्योपर
जगतअनंतअनंतफणोंपै।धन्योअनंतनगर्वकन्योंपै॥
परशुरामतेआदिप्रबीनों।जिनभवकोतृणवततजदीनों
इंद्रादिकपुनिअपरज्ञुधीधर[4] याजनलोकदिखे अतिशयवर

१ आठवें अध्यायमें २ धन्य, ३ ब्रह्माजीसे, ४ बुद्धिमान्।

चौदशभुवनराजकिल[1] भुंजत। स्वपनेहूंमदज्वर नहिंरंजत
मंदभाग्यजे[2] आदिरंक नर। तेजड नवघन[3] सुरापानकर
बंधमुक्तिविधि लखे न अंधे। कनक[4] बधूके सुखमें बंधे
अविनयवानपरमअभिमानी। व्याकुलइंन्द्रियबुद्धि विहानी
किंचितसंपतिपायदुष्टजन। करहिंगर्वअतितुच्छकृपणमन
खान पान गृहवसननके हित। चहौंखलोंते मैंनकदाचित
[5] भिसवरकेभोजनकरहमअल[6]। अचन अर्थ अल मधुरगंगजल
शयनहेतममबसबसुधातल। चीरदिगंबरवल्कलकर अल
कछुपुरपतिअरुनबधनपाये। अधिपतिधनपतिजेगर्वाये
ताते याचनको दुख जोऊ। मैं न सहारसको अबसोऊ॥

पुनः दोहा।

मुक्तिभुक्तिसंयुक्त हर, भजों [7] परन फल खाय॥
पर न दुर्जनों के घरन, देहि [8] शब्द कहुं जाय॥१०॥

श्लोकः।

स्वादिष्ठं मधुनो घृतादिरसवद्या प्रस्रव-

---

१ निश्चय करके। २ प्रथमके (बड़े) दरिद्री। ३ नवीन धन रूप मद्य का पान। ४ सुवर्ण और स्त्री के। ५ शाक आदि के। तृप्त। ७ पत्ते। ८ 'दो' ऐसा शब्द।

त्यक्षरं, देवी वागमृतात्मनो रसवतस्तेनैव तृप्ता वयम्। कुक्षौ यावदमी भवन्ति धृतये भिक्षाहृताः सक्तवः। तावद्दास्यकृतार्जनैर्नहि धनैर्भोगान् समीहामहे॥७७॥

पुनः चौपाई।

फलफूलादिशाकसतवाबर। यहि जो ल्यावैं हम भिक्षाकर
अचवौं तिहिं सु[1]रसरिजल पीके। शांत करौं जठरागानि नीके
तापचित्त को हरे जापहर। लहौं निजातम साधुसंग कर॥
सुधा[2]स्वरूप ब्रह्मवित[3]वेदी। [4]चिद जडग्रंथि समूल प्रभेदी
वाणी जाहिं भवानी के सम। स्रवति सुधांक अहं ब्रह्मास्म॥
सर्वगिरा ते ऊतम बानी। जाके गहे सर्वदुखहानी॥१३॥
मधु ते क्षीर खांड घृत रस ज्यों। स्वादुवंत अति संत शब्द त्यों
गिरा तिनहुं की श्रवण मनन कर। तृप्त[5]भवति मम चित्त निरंतर॥
जबलग इमि मम सद्गुण बर्तन। तबलग धन हित भजौं न भूपन।
भृकुटी नैन बैन मुख उरकर। भ्रमत सर्वदा द्रव्य गर्व कर॥

---

१ गंगाजी का जल। २ अमृतरूप। ३ ब्रह्मज्ञानी। ४ चेतन और जड़ की गांठ। ५ होता है।

शिश्नोदरपर धर्मविहीने। पथ परमार्थ परार्थ न चीने॥
तापंदाति[1] है ताते वित्ता। करेन संग्रह भोगनिमित्ता॥
ताहिंपामरेंतेजनपामर। चाहितद्रविणहिंसहित अनादर।
मणी[2]फणी के शिरकी जैसे। जो जांचे सो बांचे कैसे॥
विषयभोगकेहितवांछेवित[3]। धनकेहेतधनाढहिंबाछत॥
ताते विषय मोहमेंछोरा। धन धनाढ्य सों कामनमोरा॥

दोहा।

तनरक्षा भिक्षा करे. गुरुशिक्षा उर पोष।
भोग भूप धन मोक्ष रिपु, मोक्ष करे हित मोक्ष॥ १९

श्लोकः।

दुराराध्यः स्वामी तुरगचलचित्ताः क्षि-
तिभुजो, वयं च स्थूलेच्छा महति च पदे
बद्धमनसः। जरा देहं मृत्युर्हरति सकलं
जीवितमिदं सखे नान्यच्छ्रेयो जगति
विदुषोऽन्यत्र तपसः॥७८॥

---

१ उनके दास। २ सर्प। ३ धन।

पुनः कवित्त।

तजे दुराराध्य[१] स्वामी कृपण कुमगगामी,
वाजिवत[२] चल चित्त भूपन के मानिये।
ताते मे सथूल चाहि पुरी होति नाहिं ताते,
लयो मन ताहि माहिं पद जो महानिये॥
जरा हरे काय हरे कालसमुदाय प्राण,
ताते तप करों सखे [३]विदुषो बखानिये।
तपविना आनमग श्रेयको न मध्य जग,
तप नाम चित्तकी एकाग्रताको जानिये॥२०॥

श्लोकः।

पुरा विद्वत्ताऽऽसीदुपशमवता क्लेशहतये, गता कालेनासौ विषयसुखसिद्ध्यै विषयिणाम्। इदानीं संप्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रविमुखानहो कष्टं सापि प्रतिदिनमधोऽधः प्रविशति॥७९॥

---

१ दुःख से आराधना करने योग्य। २ घोड़े की चाल की नांई
३ विद्वानों ने।

पुनः सवैया।

[1]श्रुति बोध विरोध निवारण कारण। आक हुतो सुमखा सजनाको।
कछु काल गये रसि आनद ये सुख। भोग किलाभ निमित्त धनाको॥
अति खेद सुविधा अविद्या भई। अव मोक्षन भोग जनें पुरुषाको।
[2]प्रतिवासर जात अधेति[3]अधे। खल वेद निरुद्ध विलोक नृपांको॥

पुनः टीका चौपाई।

पुं रामातवत[4] थी विद्वत्ता। पुरुषों के कल्याण निमित्ता॥
सुजनो पढ़े मुक्ति हित वेदा। तिनहुँ[5] जन्यो तिन उर निर्वेदा[6]
स्वारथ सिद्धारथ बैरागहिं। जन्यो विवेक सखा तिहिं जागहिं
युगल[7] सखे मिल हन्यो युगम भ्रम[8] ज्यों रवि दग तम हरत विना भ्रम।
शास्त्रज्ञान इमि बंधन हर्ता। पूर्व सुभयो मुक्तिको कर्ता॥
किंचित काल व्यतीत भयो जब। वही बोध जन मुग्धन को तब
विषय सुखहु की सिद्धि निमित्ता। होत भयो क्रम करत तवित्ता।
तिनों जनों जब तंत्र अधीते। करत भये नृप श्रवणास प्रीते
गुरु गो विप्र निदर सन माहीं। त्रिधा अनन्य भक्ति उर जाहिं॥
धर्मी सत वादी मन दाया। शुभ गुण मंदिर असन रराया॥

---

१ विद्वानों ने। २ प्रतिदिन। ३ नीचे नीचे। ४ माता के समान। ५ पैदा किया। ६ वैराग्य। ७ दोनों मित्रों ने। ८ द्वैत का भ्रम।

तातें[1] आमनाय सुनसादर। देतद्रव्य बहु ज्योंजलबादर
इमिभोगनकोकारण होई। अहोखेदअबविद्यासोई ॥ २७
दिनंदिनअधेअधेकोधावे। मुक्तिभुक्तिनहिंउभयउपावे ॥
यामैंअवरनकारणकोऊ। क्षितितलभोक्तानृपगणहोऊ ॥
कृपणअभक्त[2] मुग्धअतिपापी दुर्मगगामीमृषा[3] अलापी॥
शास्त्रमाहिंनाहिंरतिराई। अगुणअयशनिधिअसनरराई
सोअबविद्या देखतिन्होंको। नाहिं भुक्तिभी देत जनोंको
श्रवणकरतनहिंपठतनआपहिं। कबहूँ कहूँ पुण्यपरतापहिं
किंचितकथासमागमबनहै। सुनतअरुचिनाहिंतामें मनहै
चित्तभ्रमत[4] भवअर्थनमाहीं। कथाअर्थ कछुबूझतनाहिं॥
अरुश्रद्धाविनजबकछुदर्वहिं देहिंताहिंकोतबअतिगर्वहिं
वक्ताकोअनुचरवतजानें। तातें करत नअतिसनमानें ३२
अरु वक्ताकी इच्छा जो है। तातें तृप्त कदापि न हो है
तातें जोबुधिमान अहेजन। भूपन भवने गमनकरोजिन

दोहा।

निर्दूषण भूषण महा, रूखन सेवहि सोय।
तबैं तनय विद्या जनें, भुक्ति मुक्ति शुभ दोय ३४

---

१ संप्रदाय. २मूढ. ३झूंठ बोलने वाला. ४ संसार के विषयों में।

सोरठा ।

विद्या वधू प्रसूत, शांति ध्वनी भूमेऽभवत ।
जने प्रबोध सुपूत. हने कलेश अशेष तब ॥ ३५ ॥

श्लोकः ।

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृप-
शतैर्भुवस्तस्या लाभे क इह बहुमानः-
क्षितिभुजाम् । तदंशस्याप्यंशे तदवयव
लेशेऽपि पतयो, विषादे कर्त्तव्ये विदधति
जडाः प्रत्युत मुदम् ॥ ८० ॥

दोहा ।

भयो गर्व बहु नृपनको, वरणौं किंसम सोय ।
केवल वृथा निमित्तबिन, जडतासूचक होय ॥ ३६ ॥
भई अभुक्त न निमिष अपि, भूपगणोंकर गाय ।
चगल सगल भूपानकी, ताहि पाय गर्वाय ॥ ३७ ॥
तासुअंश पुनि अंशतिहि, ताअवयव लवलेश ।
तिहिं उचिष्टके पति भये, गर्वहिं हम दुहनेश ॥ ३८ ॥
[1]गणिकासम क्षिति[2] बहुपती, पुनः सर्वकी जूठ ।

---

१ वेश्या के समान. २ पृथ्वी ।

ताहि भोगकर भूप शठ, मुदिता धरें अनूठ ॥३९॥
परम निंद्य यहि कर्मकर, पश्चात्ताप करें न ।
उलटे मद मुदिता धरें, धिक् पुरुषाधम तेन ॥४०॥
पुनि धिक धिक तिन नरनको, तिने घरन जे भाग ।
नमो करन तनभरण हित, शरण विश्वंभर त्याग ॥

श्लोकः ।

गंगातरंगकणशीकरशीतलानि
विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि ।
स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि
यत्सावमानपरपिण्डरता मनुष्याः॥८१॥

पुनः सवैया ।

शुचिगंगतरंगकिबूँदकणीकरिशीतलचारुहिमाचलकीशिल
जिहिंफूलफलादिउपानधरेंशिवकोनितसेवत [1]देववधूमिल
परभोजनमेंनिजजोजनदेंदिलतागिरिकोकृतकालखयोगिल
अपमानसही[2]अपमानसही[3]विदधीरभहीनृपधामअहीबिल[4]

श्लोकः ।

फलं स्वेच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षिति-

---

१ देवाङ्गना, २ नीच मनुष्यही, ३ विद्वान् ४ सांपका बिल ।

रुहां, पयः स्थाने स्थाने शिशिरमधुरं पुण्यसरिताम्। मृदुस्पर्शी शय्या सुललितलतापल्लवमयी, सहन्ते संतापं तदपि धनिनां द्वारि कृपणाः॥ ८२॥

पुनः सवैया।

प्रतिकाननवृच्छ[1] नतेमनवांछित, लाभसुखेनफलादिअपारा।
सरिताकिसथान[2] सथानविखे, शुचिशीतलमिष्टमिलेबहुवारा[3]।
[4]जलपत्रवतीमृदु[5]सापरशी [6]तलपादिके होवतभूपनद्वारा।
सटके मतिमान महाभटकेमतिमानतहाँकतहोवत[7]ख्वारा।

श्लोकः।

किं कन्दाः कन्दरेभ्यः प्रलयमुपगता निर्झरा वा गिरिभ्यः, प्रध्वस्ता वा तरुभ्यः सरसफलभृतो वल्कलिन्यश्च शाखाः। वीक्ष्यन्ते यन्मुखानि प्रसभमपगतप्रश्रयाणां खलानां, दुःखोपात्ताल्पवित्तस्मयपवनवशान्नर्तितभ्रूलतानि॥ ८३॥

---

१ प्रत्येक वनमें. २ स्थान स्थान पर. ३ जल. ४ जलवत् स्वच्छ, शीतल और कोमल पत्तोंवाली, ५ कोमल स्पर्शवाली, ६ शय्या आदि, ७त्यागके।

कवित्त।

कंदराते कंद मूल कहा निरमूल भयो,
वारिवारे नग किधों देत हैं न बनको[१]।
मीठे फलोंवारी डारी तरोंकी न फल देहिं,
कैधों द्रुम देतें हैं न वलकल जनको॥
दुःखसों मनाक[२] धन साधके मदांध भए,
मदव्यारसाथ जो भ्रमावें [३]भ्रूलतनको।
खलोंके कुमुखोंको सबल सो पुरुष पेसें,
अहो कैसे तजे ऐसे बन चिंतामणिको॥ ४४॥

श्लोकः।

मृत्पिण्डो जलरेखया वलयितः सर्वो ऽप्ययं नन्वणुस्तं स्वीकृत्य सदैवसंयुगशतै राज्ञां गणा भुञ्जते। ते दद्युर्ददतेऽथवा न किमपि क्षुद्रा दरिद्रा भृशं, धिग्धिक्तान् पुरुषाधमान् धनकणं वाञ्छन्ति तेभ्यो ऽपि ये॥ ८४॥

१ जलको, २ थोडासा, ३ भौंहोंको।

दोहा।

वल्यो [1]जलधिजलरेखकर, यहक्षितिमृतिकापिंड।
भोगत ताको भूपगण, कर बहु समर प्रचंड॥४५॥
खंडखंड कर अरिनके, पिंड शरनके संग।
बंड बंड कर धरणि सब, भोगत भूप उमंग॥४६॥
द्रव्यगर्वकर अंधमन, कृपण दरिद्री क्षुद्र।
कुटिल कुमगगामी अधम, कामी दुःखसमुद्र॥४७॥
तजके मति निजमानको, जे मतिमान पुमान।
धनका कनका वाञ्छते,ताते धिक धिक तान॥४८॥
शूम धनी धनकी कनी, देंहि किधों नहिं देंहिं।
बुद्धिमानकी बुद्धिको, मानसहित हर लेंहिं॥४९॥
दाममात्र न ददामि धन, करहिं निंद अपमान।
पुरुषप्रतिष्ठामानको, जीवन मृत्युसमान॥५०॥
हरके घरके भोगको, त्रिपतहिं नृपन निकेत।
भोगप्रेतकर इमि ग्रसे, शशी राहु रवि केतु॥५१॥
संचित अर्थ अनर्थकर, भोगत साधु ज्ञु तास।
लेत पाप सभ आप तिंहि,देत पुण्य निजराशि॥५२॥

---

१ समुद्र से जलकी रेखा से, २ भोगरूप प्रेतसे।

भूपनसम भूपानक, भोगत भोग ज्जु साधु।
सो तदवत दुर्गति गहे, शमदमादिकर बाधु॥५३॥
इत निंदा उत मंदगति, तासु भ्रष्ट बिब लोक।
ज्वरवतको[1] घृतवत[2] हते, शुभको नृपको ओक[3]॥

सोरठा।

दुग्धसाधुमनमाहिं, राजअंश कांजी मिले।
युगल शीघ्र फट जाहिं, गहे मुमुक्षू नाहिं तिहँ॥५५

दोहा।

दुहे साधु धीधेनुको[4], दुग्ध सुकृतसंबूह।
अर्प भोग वासादि तिहँ, भूप गोपाविधि ऊह॥५६॥
बहुभोगोंकर पुष्ट तन, तन पुष्टे मन पुष्ट।
मनपुष्टे मद मदनलौ, पुष्ट होत रिपु दुष्ट॥५७॥
जन विरक्तको भूप जिन, बहुत भुगावे भोग।
नातर साधु असाधु है, पाप भूपको होग॥५८॥
मलिन अन्न कर मलिन मन, शुद्ध अन्न कर शुद्ध।
अलबत चित जासों मिले, भवत तथाविधि बुद्ध॥५९

१ ज्वरवालेको. २ घीके समान. ३ घर. ४ बुद्धिरूप गायको।

वरधनाढ्य सतभावकर, यजे[1] संतको जोय।
गंगोदकके पानसम, तृषा कुगति हत दोय ॥६०॥

सोरठा।

ताते यथाधिकार, यजे साधुको भूपवर।
नातर तिने धिकार, देत लेत जु विचारविन ॥६१॥
नृपधनधनुते धीर, शरके सम सरके झटित।
पोखें चित्त शरीर, हरि भज भिक्षा अन्नकर ॥६२॥

दोहा।

भयो भरतवैराग्यको, अलं अष्टमोऽध्याय।
धर्मविमुख भूपानको, निंद्यो तासु मिलाय ॥८॥

दोहा।

नवमें रविवृतकर[2] कहें, दशा प्राक[3] विदमान।
सुमर सुमर गतदिननको, हँसत समाधि उथान॥१

श्लोक।

येवर्धन्ते धनपतिपुरःप्रार्थनादुःखभाजो,
ये चाज्ञत्वं दधति विषयाक्षेपपर्यस्तबुद्धेः।

---

१ पूजा करे, २ बारह श्लोकोंसे, ३ पूर्व में।

तेषामन्तः स्फुरितहसितं वासराणां
स्मरेयं. ध्यानच्छेदे शिखरिकुहरग्राव-
शय्यानिषण्णः ॥ ८५ ॥

पुनः कवित्त।

गुफाके पखानपै समाधितें उत्थान पाय,
ब्रह्मध्यान सुखको मैं ध्यान कीनों [१]अहिसे।
बीते जे दिहार[२] दुखवारे ता समार हसा,
दुष्टधनीद्वारे जे भ्रमानवारे [३]अहिसे॥
दुःखजडताके हेतु याचनानिकेत जे थे,
भोगलाभके समेत मद देत [४]अहिसे।
जेई मोरी [५]मत्त हते अब वहि अहिगते,
अहँ बीते अहि मोर वहि अहिअहिसे॥ २॥

श्लोकः।

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंस्कारजनितं
तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदपि।
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषा,
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते८६

१ सहजहीं, २ दिन ३ थे, ४ सर्पके समान ५ बुद्धि।

पुनः वही झूलना।

भोगसंयोगकरदुष्टअज्ञानअरि मोररउरमाहिं भयोपुष्टमाना ॥
[1]संमरकेतिमिरमै[2]संसकारोपजेसारसंसारको [3]नारिजाना
बुद्धिकेनैनमो[4]ज्ञानअंजनादियोपादत्रैनैनके[5]सेवमाना
भयोअबचतुरमैंलोकदश[6]चतुरमैंब्रह्मकोवेद[7] करभेदहाना

श्लोकः।

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं,तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः। यदा किंचित किंचिद्बुधजनसकाशादवगतं, तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥ ८७॥

पुनः कवित्त।

चीनों जब किंचित [8]करिंदयों मदांध भयो,
तबी मोहिं जानलीनो सबी ज्ञाता आपको।
तासु मदतापके प्रताप कर मोरे मन,
माहिं कछु रह्यो नाहिं ज्ञान पुण्यपापको॥

---

१ कामदेवके, २ अन्धकारमय, ३ स्त्री, ४ नेत्रमें, ५ शिवजीके। ६ चौदह भुवनोंमें, ७ जानकर, ८ हाथी के समान।

स्वच्छ सतसंग कीनो तब कछु कछु चीनों,
मूढ जानो आपको विहानो मद तापको।
साधुनको मेला[1] चारु[2] मेले[3] चारु साधनको,
जाहिके प्रतापकर पायों मैं निजापको॥ ३॥

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदल-
प्रभाचौरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रतम-
नया। गतो मोहोऽस्माकं स्मरकुसुम-
बाणव्यतिकर ज्वलज्ज्वाला शान्ता
तदपि न वराकी विरमति॥ ८८॥

पुनः वृद्धनाराचछंद।

सप्रीति नीच नारि ए सदीव मे निहार है।
सरोजनीलपत्रकांत चोर चक्षु डार है॥
इने अलक्तभावको लखो चुरात चित्त मोर।
चीर नैनसों न मैं स्वभावको निहार है॥
भयो विशुद्ध मोहिं चित्त मोहको निमित्त नाहिं।
मैन फूल बानकी कृशानु को प्रहार है।

१ सग, २ उत्तम है. ३ मिला देता है।

अजैं[1]पि ए छिनारनारि नारको न फेर है,
तियाक्षस्या[2]लते न मेर चित्त[3]शेर हार है ॥४॥

दोहा ।

नाहिं मेरुमन मेरको, दृगपतंगपर झूल ।
चपल सके कर अङ्गके चित्त तूलके[4] तूल ॥५॥

श्लोकः ।

रे कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्ड-
टंकारवै, रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः
किं त्वं वृथा जल्पसि । मुग्धे स्निग्ध-
विदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं,चेत-
श्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतंवर्तते॥८६

पुनः कवित्त ।

रे रे मीन[5]केतु किं कसीस देत पानको,
कमानके टंकारध्वनींसां न मन त्रस है ।
अरी मूढ पिक[6] काको मृदु चारु वचनोंको,
वृथा बकें न असाको ताको कछु रस है ॥

---

१ अब भी. २ स्त्री के नेत्ररूप शृगालके. ३ मनरूप सिंह. ४ रुई के समान.
५ कामदेव. ६ कोयल.

मुगधे सनिगध विदगध मुगध लोल,
मधुर कटाक्षोंते रे कर मोको बस है।
चंद्र चूडामणि जाँके चुमे चित्त पाउँ ताके
बीच अमी ध्यान वाँके मेरो मन बस है ॥६॥

दोहा।

तव पदाति थो भ्रांतिमों, भ्रम्यों गेंदकपिसान।
चित्त शांत गत भ्रांति अब मैं प्रभु अनुग[१] भवान[२]।७।

श्लोकः।

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे, जनार्दने वा
जगदन्तरात्मनि। न वस्तुभेदप्रतिपत्ति-
रस्ति मे, तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे९०

पुनः चौपाई।

स्थावरजंगमसभजगताके। ईश्वरपरमनाथगिरिजाके
अरुश्रीविष्णुदेवकेमाहीं। जामहिंकछुविषमतानाहीं॥
सर्वात्मा सबजगके अंतर। व्याप रह्योसमएकानिरंतर॥
पुनःउमाधव[३]माधव[४]दोमहिं। भेदबुद्धिमतिमोंमहिंसोनहिं॥

---

१ अनुचर. २ आपका. ३ शिवजी ४ विष्णुजी.

तदपिसुममभक्तीमधताके। तरुण[1]-शशांकशेखरे[2]जाके
भेद[3]भेदजासकरुणाते। ममअतिभक्तितासमैताते १०

श्लोकः।

मातर्मेदिनितातमारुतसखेतेजःसुबन्धो
जल,भ्रातर्व्योम निबद्ध एष भवतामन्त्यः
प्रणामाञ्जलिः। युष्मत्सँगवशोपजात-
सुकृतोद्रेकस्फुरन्निर्मलज्ञानापास्तसमस्त-
मोहमहिमा लीये परब्रह्मणि ॥९१॥

पुनः छप्पय।

वसुधा मात क[4] बंधबंधु शुभ हे सखि आगे[5]।
तात बातवर भ्रात गगन मैं तुम सब आगे ॥
एह अंतकी नमा जोर कर करौं सदीने।
तुमरे संगप्रताप सुकृत मै सब जु कीने ॥
तिन ज्ञानभानु निर्मलकर्‌यो,हान महातम मोह सब।
मैं लीन भयो परब्रह्ममैं,तुमसौं रह्यो न काम अब॥ ११

श्लोकः।

मातर्लक्ष्मि भजस्व कंचिदपरं मत्कां-

---

१ बालचन्द्रमा. २ मस्तकमें. ३ दूर किये ४ हे जल ५ हे अग्ने।

क्षिणी मास्ममभूर्भोगेभ्यः स्पृहयालवो नहि वयं का निस्पृहाणामसि । सद्यःपूतपलाशपत्रपुटके पात्रे पवित्रीकृते भिक्षासस्तुभिरेवसंप्रतिवयंवृत्तिंसमीहामहे १२

पुनः नील छंद ।

मो तज मात रमा[1] अब तू भज आन किसे ।
जे तव भोगनहेत भजें तुम सेव तिसे ॥
मैं न चहों भवभोग कहा तुम मोहिं भजें ।
लागत की निस[2]प्रेहनकी चहिती न लजें ॥ १२॥
पत्र पवित्र पलाशके नौ वनते हरकै ।
सुंदर ता पुटका[3] कर मैं करगैं धरके ॥
भीख पवित्र पवित्र घरे सतवादि गहों ।
गंगकि पाथकि[4] साथ भखों कुखिदाह दहों ॥ १३॥

सोरठा ।

हम योगी निहकाम, प्राण धरें इमि हर भजें ।
तुमसौं रह्यो न काम, रमो रमा भोगी जहाँ ॥ १४॥

---

१ लक्ष्मी. २ निस्पृहों की क्या लगती है ? अर्थात् निस्पृहों से तेरा कोई सम्बन्ध नहीं है. ३ दोना. ४ जल.

श्लोकः।

यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्मतिरावयोः।
किं जातमधुना येन यूयं यूयं वयंवयम्९३

पुनः कवित्त।

पूरबले दिनोंबिखे तेरी मेरी प्रीति सखे,
ऐसे होति भई तुम हम हम तुम हैं।
एकठो विहार शैन बैसनो अहार हुतो,
अब कहा भयो तुम तुम हम हम हैं॥
ताते तवे परे जललव[1] जलजात सोऊ,
जलजात परे टरे तू मैं ताके सम हैं।
आदि निर[2]भेदवति मति निरवेद हती,
तेरा मोह तोरा मोहिं ताते उपरम[3] हैं॥१५॥

श्लोकः

अशीमहिवयंभिक्षामाशावासोवशीमहि
शयीमहिमहीपृष्ठेकुर्वीमहिकिमीश्वरैः ९४

पुनः तोटक छंद।

हमभोजनभीखकोअन्नकरें।दिग[4] चारके अम्बर[5] चार धरें॥
कल[6]भूतलपैसुखसंगसमें।कछुकाजनराजनसाथहमें॥

१ जल का बिन्दु. २ अभेदवाली. ३ निवृत्ति. ४ दिशा. ५ वस्त्र. ६ सुन्दर.

श्लोकः।

न नटा न विटा न गायका, न परद्रोह-
निबद्धबुद्धयः। नृपसद्मनि नाम के वयं,
स्तनभारानमिता न योषितः ॥९५॥

पुनः तोटक छंद।

नटभाटविटा[1] भटगीतकना। परद्रोहबिखे हम प्रीतकना ॥
कुचभारानिमीलललना[2] नहमें। नृपधा[3]मसखे कितकामरमें ॥

श्लोकः।

यदेतत्स्वाच्छन्द्यं विहरणमकार्पण्यमशनं,
सहार्यैःसंवासःश्रुतमुपशमैकव्रतफलम्।
मनो मन्दस्पन्दंबहिरपिचिरस्यापिविमृ-
शन्, न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य
तपसः ॥९६॥

कवित्त।

स्वच्छ व्यवहार विना दीनता अहार बनाँ,
सदा चारवारजनाँबीच वास लयो है।

---

१ जार. २ स्त्री. ३ राजा के घर. ४ सदाचार वाले जनों के मध्य.

वेदाध्यैन[1] ब्रह्महक[2] शान्ति फल लाभ इक,
मंद मंद मनको संपद[3] दरसयो है ॥
ऐसे गुणों सों सम्पन्न भयो अब मेरो मन,
को उदार पुण्य जिन ऐसो फल दयो है।
चिर रातोंमाहिं शोधा नाहिं हम ताहि बोधा,
तप तो न कोऊ कियो 'हर[4] द्याल' भयो है ॥१८॥

दोहा।

भरतशतक वैरागको, [5]अलं नवम अध्याय।
तामैं अनुभव भरतको, गायो कवि सतभाय ॥९॥

दोहा।

करुणा कर दशमे भनें, साधारण उपदेश।
नव श्लोयकर जनों के, हने कलेश अशेष ॥ १ ॥

श्लोकः।

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं
विपाकपुण्यानांजनयतिभयंमे विमृशतः।

१ वेदका पढ़ना. २ ब्रह्मज्ञान. ३ वेग अथवा चंचलता. ४ शिवजी दयालु हुए. यहांपर मुद्रालंकार से कविका नाम भी आगया. ५ पूरा भाग।

महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहातीश्च विषया,
महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम् ॥ ९७ ॥

नारद छन्द।

विचित्र ए चरित्र जो भयो तपन्न[1] लोक मैं।
मनाकमात्र[2] क्षेमरूप तास ना विलोक मैं ॥
विपाक[3] पुण्य पुंजको विचार हों अहं जबै।
वही अनंत भीतिको [4]जनंत है सही तबै ॥ २ ॥
महान पुण्य बृंदको कलेश धार जो करे।
महान भोग नारिलौं बसें तबै चिरं[5] घरे ॥
वरिष्ठगान भोगते सराग सो भुगंत है ॥
लखे न जंतु कालको जु कौन काल हंत है ॥ ३ ॥
विखे पुमान दोविखे अवश्य एक तो टरे।
चलें प्रतंत्र भोग जे अनन्त रोग को धरै ॥
जनाप जो तज इने भजे निजापको तबै।
मतो समष्टको अमू न होत अन्यथा कबै ॥ ४ ॥

---

१ उत्पन्न. २ किंचिन्मात्र. ३ परिणाम. ४ उत्पन्न करता है. ५ बहुत कालपर्यन्त।

निकाम मोक्षको करैं सकाम तेजमैं मरैं ।
अहो सकाम काममों तथापि मूढ संचरे ॥
लखे सकामकामको [1]ततज्ञ अग्नि के समा ।
हहा कहा बृथा बितै सु अज्ञ ताहिमो समा ॥ ५ ॥

दोहा ।

मुक्तिहेतु निहकाम हैं भुक्ति देत सहकाम ।
केवल दुःखनिमित्त हैं, तजो जनौं [2]अपकाम ॥६॥

श्लोकः ।

आयुः कल्लोललोलं कतिपयदिवसस्था-
यिनी यौवनश्रीरर्थाः संकल्पकल्पाघ नस-
मयतडिद्विभ्रमा भोगपूगाः । कण्ठाश्लेषो-
पगूढं तदपि च न चिरं यत्प्रियाभिः प्रणी-
तं,ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवभयाम्भो-
धिपारं तरीतुम् ॥ ९८ ॥

पुनः कवित्त ।

[3]सलिलकलोलतुल्य आयुषा चपल कुल,

---

१ तत्त्वज्ञानी. २दुष्कर्म. ३ जलतरंग के समान.

यौवनकी द्युति पल्ल कछु इसथित है।
चलचित्तके समान भाव सब [१]हानवान,
घटाबिखे छटावत भोगमल इति है॥
कंठमों अलिंगना महान पीन अंगना को,
ताते जो आनंद नाहिं चिर सो रहत है।
[२]नरकाय पाय नरो [३]स्वस्वरूप चित्त करो,
भवभयसिंधु तरो पुण्यसमो बित है॥ ७॥

श्लोकः।

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो, यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता याव-त्क्षयो नायुषः। आत्मश्रेयसि तावदेव वि-दुषा कार्यः प्रयत्नो महान्, संदीप्ते भवने प्रकूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥९९॥

पुनः सवैया।

निजदेहअरोग सभोग लखो [४]नपिखो जवतीकसमीप[५]जरा।
[६]गुणमोंशकती जबलौं न गती दरसोनहती जुसबीउमरा॥

---

१ नाशवान. २ मनुष्यदेह. ३ अपना स्वरूप, ४ देखो- ५ बुढ़ापा, ६ इन्द्रियों में।

निजश्रेय[1] निमित्त अमित्तकरो पुरुषारथको सुनरों उचरा
जरते गृहकारण [2]कूंपखनैं बहु उद्यम तो अंधकूपपरा॥ ८

श्लोक ।

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः स्थी-
यते गर्भमध्ये, कान्ताविश्लेषदुःखव्याति-
कराविषमे यौवने विप्रयोगः । नरीणाम-
प्यवज्ञा विलसति नियतं वृद्धभावोऽप्य-
साधुः, संसारे रे मनुष्या वदत यदि सुखं
स्वल्पमप्यस्ति किंचित ॥१००॥

पुनः अर्धनाराचछन्द ।

अमेध्य[3] कुक्षिमें महाँ । रुकंत काय सो तहाँ ॥
विराजमान होय है । महान कष्ट जोय है ॥९॥
जबै प्रसूतवायुते । सदुःख बाहिरावते ॥
कृम्यादि[4] गंदग्यादिते । सहे महा विषादते ॥१०॥
प्रहार मात तातकी । सहे सखादि भ्रात की ॥
[5]शिशादिमों अंनतही । सहे कलेश जंतु ही ॥११॥

१ कल्याण. २ कुँआ. ३ अपवित्र. ४ कीड़े आदि. ५ बालपन आदि में ।

पुना युवाविषे जबे। त्रियावियोग है कबे॥
अनन्त कष्ट जोय है। सहे न जात सोय है॥१२॥
पुना बालादि मैं दृशे। निरादरा हियों ग्रसे॥
अवाच्य दुःख गाव है। असाधु वृद्ध भाव है॥१३॥

चौपाई।

तीन अवस्था तीन कालमें। नहिं अवलोकत सुख कतहूंमैं॥
[1]अजचींटीतलेभवजेतो। सर्वदुःखकरसंयुत तेतो॥१४॥
सुखस्वरूपहैएकनिजातम। इतरदुःखमयसर्वअनातम॥
तासुख[2]ऋतेकितेसुखजोलव। तौतुमभनों जनोंनिजअनुभव
जोतुमसुखकेप्रापतिकारण। सहो दुःखते दुखतर दारुण
मरणप्रयंत कष्ट अतिपावो। सुखीस्वसुखते कबीनगावो

दोहा।

जेते सुख सतलोकलौं, ते ते देत कलेश॥
आतमसुखते ऋते[2] सुख, किते नहीं लवलेश १७

श्लोकः।

भोगा मेघवितानमध्याविलसत्सौदामि-
नीचंचला, आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलि-

१ ब्रह्मा. २ बिना।

नाम्बुवद्भङ्गुरम् । लोला यौवनलालना तनुभृतामित्याकलय्य द्रुतं योगे धैर्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विदध्वंबुधाः १०१

पुनः नीलछंद ।

मेघवितानसमान विषे [1]चपला चल ज्यों ।
हैं शबदादिक भोग सबै अतिचंचल त्यों ॥
संघट वारिदवृंदबिखे जल वायु हरे ।
काल तथा सब जीवनकी हत आयु करे ॥ १८ ॥
भोगनकाज लड़ावत यो जन यौवनको ॥
लोल कलोलसमान स्वभाव लखो तिनको ॥
बिश्व समस्त विनश्वर शोध तुरंत नरो ॥
योगविखे निजचित्त अरोपण नित्य करो ॥ १९ ॥

दोहा ।

धीरज करके सिद्ध जो, सुभग[2] समाधि तुरंत ।
तामहिं अरपो मन जनो, पुनर्जन्म है अंत ॥ २० ॥

श्लोकः ।

भोगा भङ्गुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेवचायं

---

१ बीजली. २ सुन्दर ।

भवस्तत्कस्यैव कृते परिभ्रमत रे लोकाः कृतं चेष्टितैः। आशापाशशतोपशान्तिविशदं चतः समाधीयतां, कामोच्छित्तिवशे स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः॥

पुनः चौपाई।

विषयभोगजेअनिकप्रकारे।दुखद सरोगविनश्वरसारे॥
एततही भवरूप निहारो।विनाभोग संसार असारो॥
तउकतहेतजगतकृतअंतर।कीट[1]कपिनवतभ्रमतनिरंतर
रेलोकोअविलोकोनाहीं।शिरपर कालबाण करमाहीं॥
क्षणमहिंप्राणहानकरडारे।बली अक्षमी[2]दया न धारे॥
तुमनिशिदिनअघओघकमाते।बलअबलादिस्वादुमदमाते
जानो मनमामरणो साँचो।तब कतहेत वृथा भवराचो॥
भाँतिभाँति भवचेष्टाकरके।लहो कदाचितशांतिनमरके
ममवचननमहिंतवश्रद्धाजब।दुस्सं[3]कल्पविकल्पतजोतब
आशापाशबहुतविधिकीजे।तासुनिवासनउरमहिं दीजे
रजोतमोमय [4]धीवृत्तीलख।करोतासुकोनाशपाशलख॥

१ कीड़े और बन्दरोंके समान. २ क्षमाशून्य. बुरे संकल्पः ४ बुद्धि की वृत्ति।

निर्मल सतोवृत्तिसोंमिलकर। नरोकरोतुममननिर्मलतर
ऐसेविशदचित्तकोलोको। सम्यकनिजस्वरूपमहिं रोको।
चितचेतनबिबानिर्मलताते। होहिंअभेदसजातीजाते२७
भेदसजातीपुनः विजाती स्वगत त्रिभेदअतीतअजाती
तातेतामोंवृत्तिसजाती। अरपो जनों तुमूं दिनराती २८
जीवईशकोभेदनभोरा। जाहिंमिले पुननाहिं बिछोरा॥
सकलकामनात्याग अधीनो। सर्वेच्छा तजताको चीनों॥
यातनमाहिंनिजातमसुखको अनुभवकरोहरोभवदुखको
मोरगिरामोंतोरसनेहा। धरो तबै तुममम मति एहा३०

दोहा।

विषम[1] दुखद क्षणभंगमय, भोगरूप संसार।
ताको विद ससारसम[4], कोविद[5] देत निवार॥ ३१॥

श्लोकः।

तस्मादनन्तमजरं परमं विकाशि, तद्-
ब्रह्म वाञ्छत जना यदि चेतनस्थाः।
यस्यानुषङ्गिणइमेभुवनाधिपत्यभोगादयः
कृपणलोकमता भवन्ति॥ १०३॥

---

१ कठिन. २ सर्पके देहरूप अथवा भोगरूप. ३ ज्ञान अथवा जानके.
४ महाजलजंतुके समान. ५ विवेकी।

पुनः सवैया।

जबहोबुधिमान[१]पुमान[२]भवानतबीततब्रह्मकोध्यानधरो
जुअनंतविकाश[३]परंअजरंततला भतिआननलाभ परो
रुचिहेतुविपश्चित केचितकोभवभोगकदाचितहैसगरो॥
जननीचकरेरतिबीचइने अज्ञतज्ञविखे इतनोअंतरो३२

पुनः तोटकछंद।

जडरूपसबी[४]तनआनजिते।जिनमैंनशुभाशुभज्ञान किते
चिदएकलखोनरकेतनको। जिसमांहिल[५]खेसतचेतनको
सुखरूप अनंतपरंअजरं अजरूप विकाश अनूप ररं॥
सम ए दशलक्षण आतमके अधुनारथ भाषतहैंतिनके
वहिसत्यत्रिकालअबाधजुहै।इनमें[६]श्रुतिलौकिकमा[७]नदुहै
श्रुतिवाक्यसदैवइतादिररे[८]।जनजेजनमांतरकामकरे॥
फलताकृतको इतलोकमिले।इतकीकरणीपरलोकफले॥
इमिजीवमरे नहिंलोकमते।सबजीवकुजीवअहोजहँते॥
[९]मनधीतनलौंजडरूपसबै।नस्वते[१०]जिनमोंकछुज्ञानकबी
इकचेतनतेसबचेतनहैं।इतिहेतु[११]चिदातम धीरलहैं३७

---

१ पुरुष २ आप ३ उत्कृष्ट. ४ देह. ५ सत्यस्वरूप, ६ वेद, ७ प्रमाण, ८ कहती है, ९ मन, बुद्धि और शरीरके समान, १० अपने आप ११ इसलिये।

सुखसागरब्रह्मकिअंशकनी।[1]अनुस्यूतत्रिलोकिविषेसघनी
स्थितकंचनकंदलमाहिं यथा। सब भोगन मों सुखताहिंतथा॥
तिहितेनकृते[2]सुखनैककिते।सुखमूरति[3]स्वातमहेतु इते॥
नप्रमाणविषेनाहिंनाशजिसे।परिपूरणऔनाहिं[4]जन्यकिसे
इतिहेतुअनंतनिजातम है। परतेपर जो परमातम है॥
[5]तन[6]वाम[7]तनैधनधामपरे।जिहँवेद[8]मनादिनवेदररे४०
इतिरीति परातमवेदभना।अजरातम मायककायविना
अथवा[9]आसिआग्निकटेनदहे।सबकातमते अजरासुकहे॥
इतिपारथकोभगवानरटो।नाहिंजन्य अनादिस्वतेप्रगटो
भवहेतुविशेषणचारगहे।[10]तसमातअजातमवेदकहै ४२
नहिंजाग्रतस्वप्ननर्नींदविखे।सकुचातविकाश स्वरूपविखे
थकवेदहटेउपमाभनके। त्रिपुटीविन एक विषे किनके
इतिहेतुअनूपपुनःसमहीं।दुगधादिसमं परिणामनहीं॥
जितएकरसातम वेदकथा।अथवा सबमों समरूपतथा
तुमचेतनकायकोपायनरो। इसचेतनमों अतिप्रातिकरो

१ व्याप्त अथवा ओतप्रोत. २ बिना. ३ अपना आत्मा. ४ किसी से उत्पन्न नहीं. ५ देह. ६ स्त्री. ७ पुत्र. ८ जिसे मन आदि नहीं जानते. ९ तलवार. १० इसीसे.

[1]भुवनाधिपतादिकभोगजिते।ततब्रह्मअवांतरणभितिते
[2]द्युतिदीपयथा रविमैं बरते।न[3]रते इनमें नरजे वरते।
इनमैं जनमूंढ सनेह करैं।[4]तस्मात पुनापुन देहधरैं४६
तनचेतन[5]चेत नहेतु भयो।भवभोगनहेतु नदेवदयो॥
इतिहेतुजनोतुमभोगतजो।तनमानसमोनिजब्रह्म भजो।

श्लोकः।

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्मअ-
हाशासने, तल्लब्ध्वासनवस्त्रमानघटने भो-
गे रतिं माकृथाः। भोगः कोऽपिस एकएव
परमोनित्योदितो जृम्भते,यत्स्वादाद्विरसा
भवन्ति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः॥१०४

पुनः कवित्त।

परम उदित नित्य इवप्रकाश सतं चित,
ऐसे एक ब्रह्ममैं को एक जन बसे हैं।

---

१ लोकाधिपत्य आदि. २ दीपक की कान्ति. ३ इनमें जो नहीं रमें वे मनुष्य श्रेष्ठ हैं. ४ इसीसे . ५ चैतन्य (ज्ञान) के लिये.

कंज[1] पूत पुरूहूत[2] की विभूति[2] भूत शिखी[3],
घासराशके समान मानके न फँसे हैं ॥
तीनलोकराज्य आदि संपदा अस्वाद भासे,
जाकी छायामात्रकर मायामात्र लसे हैं ।
ताते भिन्न भोग क्षणभंगुर को राग तजो,
राग द्वेष नाग [4]रिदेबिलमों न धसे हैं ॥४८॥

दोहा ।

भोग राग जबहीं गयो गयो द्वेष तिहँ संग ।
जबै विलय यहि द्वैत भ्रम, तबै तबै चिद अंग॥४९

श्लोकः ।

भोगास्तुङ्गतरङ्गभंगचपलाः प्राणाः क्षण-
ध्वंसिनः, स्तोकान्येव दिनानि यौवनसु-
खं प्रीतिः प्रियेष्वस्थिरा । तत्संसारमसार-
मेव निखिलं बुद्धा बुधा बोधने लोकानु-
ग्रहपेशलेनमनसायत्नःसमाधीयताम्१०५

१ ब्रह्मा २ इन्द्र का ऐश्वर्य. ३ अग्नि में तृणराशिके समान. ४ हृदय रूप.

पुनः कवित्त।

तुंग[१] भोग इन्द्रलोक सत्यलोकलग जे जे,
ते तेही तरंग सम भंग पहिंचानो रे।
जीवनके जीवने की रास एक स्वास सोऊ,
दामिनी समान क्षण माहिं हान जानो रे॥
यौवन को सुख थोरे दिनोंमैं विमुख होरे,
मीतनकी प्रीति पुनि नीत न पछानो रे।
सकल संसार को विचारके असार तजो,
बोधहेतु बुद्धिमानो मेरी बुद्धि मानो रे॥५०॥

दोहा।

मुख[३]आत्माके दर्श हित, चितादर्श को शोध।
सभ पर करुणारेणु कर, विनशे द्वैतविरोध॥५१
दशमो सर्व सुहृद अती, भयो सुअंतर्धान।
हरे सकलके दुःखको, करे वेग कल्यान॥१०॥

---

१ ऊँचे ऊँचे अथवा बडे बडे. २पानी की लहर के समान. ३मुखरूप आत्माके दर्शनके लिये सर्व प्राणियों पर करुणारूप मिट्टीसे मनरूप दर्पणको साफ करना चाहिये. ऐसा करने से द्वैतरूप विरोध दूर हो जायगा।

सोरठा।

[1]रुद्राध्यायमंझार, [2]अधुना निंदहिं नारिको।
चार श्लोक उचार, जाते तजे उदार त्रिय ॥१॥

श्लोकः।

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ, मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम्। स्रवन्मूत्रक्लिन्नम् करिवरकरस्पर्धि जघनम्, मुहुर्निन्द्यम् रूपम् कविजनाविशेषैर्गुरु कृतम् ॥ ११६ ॥

कवित्त।

मांसग्रंथि कुचन को कंचनके कुम्भ कहैं,
[3]सोमसम मुख कफधामको उचारें हैं।
चंपाकली के समान दाडिम के दाने भाने,
हाड़नकी दाँतपाँति को दिवाने सारें हैं॥
मूत्रभिगी जंघनकी संघनी बडाई भने,
निंदत [4]गजिंदकर केलाको निवारें हैं।

---

१ गेरहवें अध्याय में. २ अब. ३ चन्द्र के समान. ४ हाथी की सूंड को.

अहो निंदायोग्य रूप अंगनाको ताकी ऊप,
ध्वने मतवारे शीश धुने मतिवारे हैं ॥२॥

श्लोकः।

दीना दीनमुखैः सदैव शिशुकैराकृष्टजी-
र्णाम्बरा क्रोशद्भिः क्षुधितैर्निरन्नाविधुरा
दृश्येन्नचेद्गेहिनी।याच्ञाभंगभयेनगद्ग
दगलत्त्रुटयद्विलीनाक्षरं को देहीति वदे-
त्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी पुमान् ११७

पुनः कवित्त।

जठराग जारे पेट निज ताँके शाँतहेतु,
कौन मानी प्राणी देहि वाणी जो उचर है।
गदगद गलत तुटत लीन अँक जामैं,
यांचाभंग भैसों ऐसी गिरा[१] भी न रर है॥
भुखे [२]वार रोके गार देके टूको माँगे माते,
दीनादीनमुख जाके क्षीणा[३] पट हर हैं॥
जौलों ऐसी निजनारी व्याकुली निहारी नाहिं,
पेखनेते पेखने ज्यों नाचे घरघर हैं॥ ३ ॥

१ वाणी. २ बालक, ३ फटा.

श्लोकः।

सत्यामेव त्रिलोकीसरिति हरशिरश्चुम्बिनीविच्छटायां सद्वृत्तिं कल्पयन्त्या वटविटपभवैर्वल्कलैः सत्फलैश्च। कोऽयं विद्वान्विपत्तिज्वरजनितरुजातीव दुःखासिकानां वक्त्रं वीक्ष्येत दुःस्थे यदि हि न बिभृयात स्वे कुटुम्बेऽनुकम्पाम्॥ १०८॥

पुनः दोहा।

दुरित[1] हरत त्रैलोकके, तुरत त्रिलोकीसरित।
ईशशीशकी जटाको. छुहति छटा जिहँ सरत॥४॥
ता तटपर संघट विटप[2], वल्कल फुलफलदाय।
सुखद सर्वदा रुचिर शुचि, शुभवटादिकी छाय॥५

सोरठा।

अस [3]सुरसरिके होत, कृपण नृपन दुर्मुखनको।
निरखत निपुन न कोय, निजकुखपोखनकारणे॥६॥

---

१ पाप. २ वृत्त, ३ गंगाजी।

दोहा।

उत्पतविपतातापते, दुसह दुःख जु क्षुधादि।
निजकुटुंब अस विकल लख, करे सुजन जु प्रसादि॥
वही पुरुष परिवारकी, विपताहरणनिमित्त।
[1]वायकसायक खलोंके, सहे सही हित वित्त॥८॥
दुखी देख परिवार निज, दुखी होत मतिहीन।
भ्रष्ट आतमानंदते, भयो दीनते दीन॥९॥
करुणा करे कुटुंबपर, दुखी देख तिहँ अंध।
नरते दुख टरते न तिहँ, जो [2]अदृष्ट प्रतिबंध[3]॥१०॥
जासकृपाकी कृपा कर, नाश उभय आनंद।
ता करुणाते नरनको, मरणाशुभविन मंद॥११॥

सोरठा।

तत तत करते काम, भवत दुःख परिणामजित।
त्रियानुकंपादाम, गरे परी पशुवत चरे॥१२॥

दोहा।

दुःखविसरजन कृपण घि, सहत कष्टते कष्ट।

---

१ वचनरूप बाण. २ प्रारब्ध. ३ रोकने वाला।

निशिवासर आसुरमती, करत [1]स्वापको नष्ट ॥ १३
बंध्यो जात भवसिंधुमहिं, पायो कष्ट अवाच ।
दया न शठ निजपर करे, जाते दुखते बाच ॥ १४ ॥
सुजन मया निजपर करे, अपनो करे उधार ।
भजे हरी हरिद्वारको, तजे कुटिल परिवार ॥ १५ ॥

सोरठा।

मात तात गुरु नारि, जो विघनी हरि भजनमहिं ।
ताको डार उदार, हरिभज जन्म सफल करे ॥ १६

श्लोकः ।

विरमत बुधा योषित्संगात्सुखात्क्षणभंगु-
राद्भजत करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसंगमम् ।
न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तनम-
ण्डलं, शरणमथवाश्रोणीबिम्बं रणन्मणि-
मेखलम् ॥ १०९ ॥

पुनः चौपाई ।

योषितयुतसंभव सुख जोऊ।हरो नरो क्षणभंगुर सोऊ

---

१ अपने आत्मा को ।

आयु स्पर्शमात्र है ताकी। भोगत परमदुःख तिहँ बाकी॥
भोगानंदन धनबिनपावत। विनाअनर्थद्रव्यनहिंआवत
विषयभोगसुखलाभनिमित्ता। करअनर्थकछुसंचितवित्ता
ताकरदुखमिश्रितसुखभोगत। ताफलमरकरलहतअधोगत
ताते नखशिखाग्रलौंनारी। मोक्षविषेप्रतिबंधक भारी॥
निकरदुखांकुरत्रियकेगाता। तजेत्रिधा[1] विधिताहिंप्रमाता
घनकुचमंडल मृदु रमणीको। संयुतमुक्ताहारमणीको॥
सर्वओर अतिसुंदर लागे। हेरत जास [2]मनोभव जागे॥
हेममणीमय बणितडागी। श्रोणींबिंबोंपर वर लागी॥
अतिशब्दायमानअभिरामी। जिहँध्वनिसुनजनमुह्यतकामी
अंग अंगनाके[3] हैं जेते। हेतु [4]अनंगागनिके तेते॥२२॥
तामैं जतु निरंतर जरते। उर विचारमय[5] वारि न धरते॥
क्रोधलोभमोहादि वक्र[6] छल। सखामैनके मैनतुल्यबल॥
एकपंचशरको जहँ वासा। तहाँ क्रोधलौंकरहिंनिवासा॥
जँहा एककी गणाती आवे। तहां अनेक अवश्य रहावें॥

---

१ मनसा. वाचा, कर्मणा, २ कामदेव, ३ स्त्रीके, ४ कामाग्निके, ५ जल, ६ टेढे, ७ कामदेवका।

नरतनमों जन्में अरुमरहैं। जबकुसंगसतसंगतिकरिहैं॥
सर्वअनर्थ हेतु सुखहंता। गरजत सब अपवरगप्रयंता॥
सबसंबरसम उरको जारत। शमदमादि संतोषहिं टारत
त्रियकेगात सु अंबर[1]भूषण। दर्शैकबी विलोके दूषण॥
जाकरमन[2]मथमथेनमनको। नातरमन वपुहै त्रियतनको।
लगो बाममों काम उपावे प्रथम विवेक समादिनशावे॥
छलामर्षमद मोह सनेहा। इनहिंअवयवहिंसहित अदेहा
भयो पुष्ट प्रतिजन्म मँझारी। बृहद्भानु इव जारत भारी॥
याविधिनिकर[3]अवधहतकरके। परतनरकमहिं जबनरमरके
तहांताहिंनरकागनिजारे। दुःखअवाच्य[4] अनुभवहिंसारे
तेकतनरकदुःखतेराखहिं। नहिंराखहिंप्रतितामहिंराखहिं
इतउतमाहिं तपावनवारे। नारि अवयव[5]हृदय जब धारे
ताते संग वामको तजिये। नातर अवर वधूजनभजिये॥
करुणामैत्री प्रज्ञा भारी। सेवहु सुखद [6]अयंत्रयनारी३१

सोरठा।

मत दर्शों त्रियअंग, जो कदापि चूके पिखो।

---

१ वस्त्र, २ कामदेव, ३ अवध्य जीव, ४ अनिर्वचनीय, ५ अंग ६ इन स्त्रियों को।

निश्चय लगे कलंक, भाद्रचौथके चंद्रवत ॥३२॥

दोहा।

त्रियानिंद एकादशो, अलं भयो अध्याय।
बलगुणगण नरके हरे, मरके नरके पाय ॥११॥

दोहा।

वृद्धावस्था द्वादशो, पांच छंद कर निंद।
दुःख निरादर चिंतनिधि, विन पौरुष मतिमंद ॥१॥

श्लोकः।

वर्णंसितं समधिवीक्ष्य शिरोरुहाणां, स्थानं जरापरिभवस्य तदेव पुंसाम्। आरोपितास्थिशकलं परिहृत्य यान्ति चाण्डालकूपमिव दूरतरं तरुण्यः ॥ ११० ॥

कवित्त।

जराकर सेत बार नरोंके निहार नारि,
करें ताहिं त्रिसकार भाग फेर नारिको।
हाड़घटी रज्जु नारि मंदरस हेर डार,
विप्रनारि वृद्धरूप कूप चमिआरको ॥

दाहें तीन ताप भानु नैन बैन ज्ञान कान,
तजें ताहिं मात आदि ज्यों उदार दारको।
अहो कष्ट जीव दुष्ट तजे न अनिष्ट अजे,
नारी तजे तन भजे मन अजे नारिको॥ २॥

श्लोकः।

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती, रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्। आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो, लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम्॥११॥

दुवैया छंद।

व्याघ्रीके सम स्थित हैकर जरा अवस्था करतिप्रहार।
तीक्षणक्रूरनखाग्ररोगकरपरिताडततनको बलधार॥
उचितअवधिपरिस्रवतसततइवफूटेघरतेछूटे वारि[1]।
लोकसुअहिततदपिआचरहैअहोकरेहितनांगीकार।३

श्लोकः।

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च

---

१ जल।

दन्तावलिर्हृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता
वक्रं च ललायते । वाक्यं नाद्रियते च
बान्धवजनैर्भार्या न शुश्रूषते हा कष्टंपुरु-
षस्यजीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते।११२

मनोज छंद।

सकुचे सब अंग विभंग सुचाल।
पुन भ्रष्ट समष्ट भई रदमाल[१] ॥
द्युति लोचनको सब मोचन अस्त।
नहिं कान सुने कहलान समस्त ॥४॥
मुखमध्य भई कफवृद्धि महान।
इतिहेतु सदुःख गतागत प्राण ॥
कछु याचनहेतु मुखों जब वाच[२]।
जन बंधु बकें तब वाक्य अवाच[३] ॥५॥
ललना पलना मिलना जुत जंति।
वहिनाहकिसेवकु नाहिं करंति ॥
पुन जीरण आयुष मानुष जोय।

१ दांतों की पक्ति, २ कहता है, ३ नहीं कहने योग्य.

निजपुत्र अपीं[1] सम शत्रु विलोय ॥६॥
तिनके दुर्वायक[2] सायकसंग।
उर वेधत भी न तजे तिन संग ॥
इतिरिति बितीत भई सब आउ।
न अजेपि तजे निज मंदसुभाउ ॥७॥

दोहा।

जरा[3] उपाय न ह्वैसके, जरा आयु के माहिं।
भवसागरके तरणाको, तरुणा[4] अवस्था आहि॥८॥

श्लोकः।

वलिभिर्मुखमाक्रान्तं, पलितैरंकितंशिरः।
गात्राणिशिथिलायन्ते, तृष्णैकातरुणा-
यते ॥ ११३ ॥

कवित्त।

आननकी छबि वली[5] गणोंकर टली गली,
काननकी गली वल अंकोंमें न भास है।
लोयनके माहिं कछु लोय[6] नाहिं परे स्वच्छ,

---

१ भी. २ दुर्वचनरूप बाण. ३ किंचिन्मात्र भी. ४ जवान. ५ सिकुडों के समुदाय से. ६ प्रकाश।

रसनामों[१] रस नाशो नासकला[२] नाश है ॥
केश भए उजर न रह्यो कछु उजर,
जवानी गई उजर न स्वासको विश्वास है ।
तृष्णा तो अनंत अंत भयो है संघात[३] सब,
शांति भई सांत[४] नाहिं शांत भोगआश है ॥९॥

श्लोकः ।

निवृत्ताभोगेच्छपुरुषबहुमानोविगलितः,
समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जी-
वितसमाः।शनैर्यष्ट्युत्थानं घनतिमिर-
रुद्धे च नयने, अहो धृष्टः कायस्तदपि
मरणापायचकितः ॥११४॥

कवित्त ।

तन वृद्ध भएते न वृद्ध भई भोगइच्छा,
मनमैं तो भोगनकी कोटिमन रति है ।
सनेसने[५] उतथान[६] लोचनकी द्युति हान[७],

१ जिह्वा में. २ नासिका की कला. ३ समुदाय. ४ नष्ट. ५ धीरे धीरे.
६ उठना ७ नष्ट ।

मानवको बहुमान हान भयो अति है ॥
सखे सम बैसवारे [1]प्राणोंवत जेई प्यारे,
कबके पधारे नाक[2] देखी ऐसी गति है।
अहो अजे नीच निज मीच बीच हासी भजे,
जीवन चहत मृत्यु जीवन[3] चहत है ॥ १० ॥

सोरठा।

दुख अनेकको गेह, विना विवेक विवेककर ॥
निंद जरजरो देह, भयो इतिश्री द्वादशो ॥१२॥

दोहा।

कहें त्र्योदशे कृपा कर, संकारण उपदेश।
शंकर[4] बीश श्लोककर, [5]जनमननलिन दिनेश॥१॥

श्लोक।

जातः कूर्मः स एकः पृथुभुवनभरायार्पितं
येन पृष्ठं, श्लाघ्यं जन्म ध्रुवस्य भ्रमति
नियमितं यत्र तेजस्विचक्रम् । संजात-
व्यर्थपक्षाःपराहितकरणे नोपरिष्टान्न चाधो,

---

१ प्राणों के समान. २ स्वर्ग. ३ खाने चाहता है. ३ कल्याणकारी.
५ जनके मनरूप कमल को सूर्य के समान.

ब्रह्माण्डोदुम्बरान्तर्मशकवदपरे जन्तवे जातनष्टाः ॥ ११५ ॥

गीया मालती छंद।

है धन्य कूरम एक सो पर अर्थ जिहँ भव लीन है।
पृथु[1]भुवन भार तरे जिनें निजपृष्ठ अर्पण कीन है॥
अति जन्मध्रुवको योग्यकीरतिजासकी[2]रतिहारिविखे।
चौफेर जाके तेज चक्र भ्रमंत रोक्यो सब पिखें ॥२॥
ज्यों [3]मशक गूलरफलविषे संघट महासंकट सहैं।
पख वृथा संभव ताहिंके नहिं अ[4]ध ऊरध बीच रहैं॥
संजात जहँ मरजात तहँ ब्रह्माण्डमैं त्यों जंतु हैं॥
नहिं ज्ञात धर्माधर्मकी संभोगमैं रतिवंत हैं ॥३॥
परमार्थ अरु परस्वार्थ द्वे वृत्ति पंखसंयुत जन सबे।
प्रारब्धके वशि स्वार्थके पुरुषार्थ करते संदबे॥
जन जहाँ लागे प्राण त्यागे विन तिसे नहिं तजत हैं।
सुवेदयुक्ति न बंध निज अश्रेयको जड भजत हैं ॥४॥

---

१ बडे भारी, २ भक्ति ३ मच्छड, ४ नीचे.

दोहा।

गूरलफल ब्रह्माण्डमों, मच्छरमानव आन।
गहैं मुक्तिविन जन्मगथा,स्वपर अकिंचित ज्ञान॥५

श्लोकः।

स जातः कोऽप्यासीन्मदनारिपुणा मूर्ध्नि धवलं, कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलंकारविधय। नृभिःप्राणत्राणप्रवणमतिभिःकैश्चिदधुना नमद्भिः कः पुंसामयमतुलदर्पज्वरभरः॥ ११६॥

कवित्त।

वही जन जनमे कपाल जाके उज्वलको,
धार्‍यो समरारि[1] शिर ऊँचो अलंकार मान।
मानद अमान मान जाको तन धन हान,
परकामहेत होत वही जन धन्य जान॥
केंचित [2]इदानीं प्राणी वृथा महामानी भए,
अबलादि याचकान कीनो मान जो मदान।

१ शिवजी ने. २ इस समय.

तासमान तापते पुमान कैसे तपे आप,
मानके समान साप मानको न करे मान ॥ ६ ॥

दोहा ।

अहंकारते होत सब, [1]क्रतुव्रतादि फलहान ।
अरु विन गुण जो [2]दर्प है, सो अरि सर्पसमान ॥ ७ ॥

सोरठा ।

ताते मत [3]मतिमान, मान करे अभिमान को ।
गर्व सर्व दुखखान, सुख[4] अवास मदनाश है ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

पातालान्न समुद्धृतो बत बलिर्मृत्युर्न नीतः क्षयं, नोन्मृष्टं शशिलाञ्छनस्य मलिनं नोन्मूलिता व्याधयः । शेषस्यापि धरां विधृत्य न कृतो भारावतारः क्षणं, पौरुष्यं त्वकृतं रुषाभिगणनां मिथ्या वहन्न खिद्यते ॥ ११७ ॥

कवित्त ।

बलिको पातालते निकालके न नाक[5] पठ्यो,

---

१ यज्ञ. २ अहंकार. ३ हे बुद्धिमान्. ४ सुखका स्थान. ५ स्वर्ग.

कालको न नाश कीनो [1]भवरिपु पीनो है।
वि[2]धुकी न मैल धोई व्याधिकी न जड़ खोई,
शेषशीश भार सो न काहूँ क्षण लीनो है॥
पौरुष न कछु कीनो क्रोध अभिमान पीनो,
वृथा मान लीनो नर नागसिंह चीनो है।
कीकर को तरु लाये कीकर सुफल पाये,
साधुनको पद चाहे साधनते हीनो है॥ ९॥

श्लोकः।

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या वना-
न्तःस्थली, रम्यः साधुसमागमःशमसुखं
काव्येषु रम्या कथा।कोपोपाहितबाष्पबि-
न्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं,सर्वं रम्यमनि-
त्यतामुपगते चित्ते न किंचित्पुनः॥११८॥

सवैया।

रमणीकमयंक कियाकिरणा कलभूमिवनांतहरेतृणवारी
सतसंगति सुंदरचारुसतोसुख मंजुनिबंधकथामतभारी

१ संसार का बड़ा भारी शत्रु है. २ चन्द्रमा की.

रुठसों उठकंलवलोचनतेसुठता मिलनारिमुखांबुजकारी
कमनीयसबीचतशांतजबीरमणीयतबीनकछूनिरधारी

दोहा।

दुखानन्द अरु मित्र अरि, पुना सुरूप कुरूप।
द्वन्द्व वादपरमादमों, अप्रमाद शिवरूप ॥११॥

सोरठा।

निजकुखपोखनकाम, तुल कुलदीन कबी न ह्वै।
याचे वन वा ग्राम,मानी प्राणी धन्य बहु ॥१२॥

श्लोकः।

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्नपालीं कपालीमादाय न्यायगर्भद्विजहुतहुतभुग्धूम्रधूम्रोपकण्ठम्। द्वारंद्वारं प्रवृत्तो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्तो, मानी प्राणी सुधन्यो न पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषु दीनः ॥ ११९ ॥

सवैया।

वनग्रामन मोंढक पालिकपालि[१]सितांवर[२]सोंगहिभखिस्वतंतर ॥

१ खप्पर. २ सफेद कपड़े से.

जिहँधामनमोंवर [1]बामनहोमत[2]आज्यतिलाहिप्रजारवसंतर
तिहंहोमकेधूमसोंमंदिरकोलखधूसरअंतरभागानिरंतर
बिचरे सुप्रसाद प्रसादविखे भख आदि प्रसादभखे परतंतर ॥

सोरठा।

जो जन मानी आहिं, भोजनभिक्षाको करे।
वायकसायक नाहिं, सहे सजाती जनोंके ॥१४॥

येनैवाम्बरखण्डेन, संवीतो निशि चन्द्र-
माः।तेनैव च दिवा भानुरहो दौर्गत्यमे-
तयोः ॥ १२० ॥

दोहा।

जिस [3]अंबरके खंडकर, निशिमाहिं सोम बितीत।
तिसे खंडकर पुन दिने, मारतंड संवीत ॥१५॥
अद्भुत दुर्गति दुहुनकी, भ्रमत सर्वदा जोय।
चतुहेतु यामों कहें, लहे चतुर नर कोय ॥ १६ ॥
कैधों कर्मविपाको, विधु [4]दिनमणि भोगंत।

---

१ ब्राह्मण. २ घृत (घी). ३ आकाशके. ४ सूर्य.

विन भोगे भागे नहीं, कर्मगती बलवंत ॥१७॥
कै हरिमय लखि जगतको, सेव करत द्वै देव ।
किधों हरी आज्ञा करी, भवमर्यादाहितेव ॥१८॥
अथवा संतजनानके, लक्षणाको दर्शन्त ।
हरे शुभाशुभ लोकगति, है असंग विचरन्त ॥
तजहिं आपदामाहिं भी. नहिंनिजापदा ज्ञान ॥
सूचत गुण मुक्तानके, चन्द्रभानुगति मान ॥
ताहिं गतागतको कहत, दुर्गति दुर्मतिवंत ।
पूर्वउक्त चहुँ हेतुको, जे न जानते जंत[1] ॥२१॥

श्लोकः ।

विवेकव्याकोशे विदधाति शमे शाम्याति तृषापारिष्वङ्गेतुंगे प्रसराति तरांसापरिणतिः । जराजीर्णैश्वर्यग्रसनगहनाक्षेपकृपणःकृपापात्रंयस्यां भवति मरुतामप्यधिपातिः ॥ १२१ ॥

दोहा ।

हरे तृषा वैराग सब. धरे विवेक विकाश ।

---

१ जन्तु–प्राणी.

[1]तुंगभोगसंयोगकर, होत न तृष्णानाश ॥२२॥
प्रतिप्रवृद्ध तृष्णा [2]भवत, जिमि [3]कृशानु [4]घृतसंग।
यथा विवेकीके उरे, विद्या वृद्ध अभंग॥ २३ ॥
जरासहित जीरण लखी, अपनी [5]शक्र विभूति।
दुखी भयो मनमाहिं तब, ताहिं विना [6]पुरुहूत २४
नष्टविभव भव दुसह दुख, तज नाहिं सके सुरेश।
विष्णुआदिकी कृपाको पात्र भयो [4]अमरेश॥२५॥
जरा जातुधानादिकर, भवत विभव मम हान।
करुणाकर करुणा करो. तासु त्राण भगवान २६
तुंगभोगसंयोगकर, नाश जु होती प्यास।
मघवा होतो दीन कत, हरिअजादिके पास॥२७॥
विविध विषयके भोगकर, नहिं [5]विबुधेश अघात।
स्वलप अवधि [6]लवभोग कर,नरनशांतिकतजात॥
ताते [7]इच्छानाशकी, जाको इच्छा आहि।
उपशम धरे विचारयुत, टरे एकते नाहिं ॥२९॥

---

१ बडे बड़े भोगोंके संयोगसे. २ होती है. ३ अग्नि. ४ घी के साथ.
५ इन्द्र. ६ थोड़ा. ७ इच्छा का नाश होनेके लिये.

श्लोक।

शिरःशार्वंस्वर्गात्पशुपातिशिरस्तःक्षिति-
धरं, गिरीन्द्राद्दुत्तुंगादवनिमवनेश्चापिज-
लधिम्। अधोधोगांगेयंपदमुपगतंस्तो-
कमथवाविवेकभ्रष्टानांभवतिविनिपातः
शतमुखः॥ १२२॥

चंचला छंद।

गंगनीर ए कछू [1]अधे अधे गती करंत।
[2]नाकते हरशिरे[3] पुना [4]गिरिंदपै गिरंत॥
गिरिंदते [5]धरापरे धराति [6]सिंधुमैं परंत।
शून्य जे विवेकते अनेक योनि ते धरंत॥३०॥

श्लोकः।

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु
सुरभि, क्षुधार्तः सन् शालीन् कवलयति
शाकादिवालितान्। प्रदीप्ते कामग्नौसुदृ-

१ नीचे नीचे. २ स्वर्गसे. ३ शिवजीके शिरपर. ४ हिमालयपर.
५ पृथ्वी पर. ६ समुन्द्र मे.

दतरमाश्लिष्यति वधूं,प्रतीकारो व्याधेः
सुखमिव विपर्यस्यति जनः ॥१२३॥

कवित्त।

जब मुख तृषाकर सूखे तब पीवे नर,
मीठे ठंढे हरके सुगंधिवारे वारिको।
क्षुधाकर भयो दीन [1]शालीन महीन खात,
मेलके वरीन शाक रागसों अचारको॥
जागे [2]मदनागे जब सानुरागे दौर तब,
नारमें[3] लगावै नर दृढकर नारिको।
व्याधिके प्रहारप्रति करे प्रतिकार प्रति,
कैसे दुख भागे त्यागे संयमोपचारको॥ ३१॥

सोरठा।

तृष्णावृद्धि अभंग, अतिभोगोंके भोगकर।
यथा अग्नि घृतसंत, [4]संयमजलकर शांत बिब[5] ३२

श्लोकः।

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैःशास्त्रैर्म-

१ चांवल, २ कामाग्नि, ३ गलेमें, ४ संयमरूप जलसे. ५ दोनों।

हाविस्तरैः स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः
कर्मक्रियाविभ्रमैः।मुक्त्वैकं भवभारदुः-
खरचनाविध्वंसकालानलंस्वात्मानंदपद-
प्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥१२४॥

कबित्त।

चारों वेद तंत्र छठे, सिमृति सताई पठे,
आगम जो [1]दशअठे महाविसतरे हैं।
मतोंसों विभ्रम महाकर्मक्रिया कर कहा,
देवग्राम[2]कुटीमों विश्राम फल करे हैं॥
प्रलैकाल आगवत आतमाविषैणी मति,
भवदुःख करे हत सो कुमति हरे हैं।
शेष काम सारे बणाजारे वृत्तियों निहारे,
के दुकानके पुरान कर प्राण धरे हैं॥ ३३ ॥

दोहा।

कहा ग्रंथगणके पढे, किं[3] करमोंके कीन।
[4]चिज्जडग्रंथि प्रभेदिनी,[5]धी उर जब प्रगटी न ॥३४

---

१ अठारह. २ स्वर्गमें. ३ क्या है ? अर्थात् कुछ भी नहीं. ४ चेतन और जडकी ग्रंथिको खोलने वाली. ५ बुद्धि ।

श्लोकः।

रात्रिःसैवपुनः स एव दिवसो मत्वा बुधा
जन्तवो.धावन्त्युद्यमिनस्तथैवनिभृताः
प्रारब्धतत्तत्क्रियाः।व्यापारैः पुनरुक्तभुक्त-
विषयैरित्थंविधेनामुना,संसारेणकदर्थिता
वयमहो मोहान्न लज्जामहे॥ १२८॥

छप्पय छंद।

वही [1]यामिनी जान पुना दिन तथा मानकर।
मंद जंतु [2]धावंति उद्यमात्यंत चित्त धर॥
प्रारंभी प्रारब्ध क्रिया तहँ तहँ त्यों राते।
वही उक्त पुन वही भोग भुक्ते दिनराते॥
इमि विषयरूप या जगतके, व्यापारोंकर श्रम सहैं।
परिभ्रमत विरमत न मोहकर,अहो किं न लज्जा गहैं॥

दोहा।

अहो शब्दपुनरुक्तिते, अति डरपहिं बुधिमान।
पुनाउक्त पुनभुक्त यहि,कत पुनरुक्ति प्रमाण॥३६॥

---

१ रात्रि. २ दौडते हैं।

श्लोकः।

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः, क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च संपूर्णविभवः। जराजीर्णैरंगैर्नट इव वलीमण्डिततनुर्नरः संसारान्ते विशति यमधानीजवनिकाम् ॥ १२६ ॥

गीयामालती छंद।

नटवांगुनर वहस्वांग धर वपु बालपनमाहिं लसकहै।
पुनक्षणबिखे तनु तरुण है तरुणिन भोगहिं रसकहै॥
हत सर्व द्रव्य [1]निमेषमाहिं पुनि पलकमांहै धनसबी।
दुर्वृद्धताकर अंगछीण [2]बलीनकर सबछवि दबी३७
पश्चात गातकि पातमें उतपात व्रात[3] हृदय पिखे।
यमराजधानी भू भयानी पतित प्राणी तिहँविखे॥
प्राचीन कर्म मलीनके फल दीन है भुगवे तहीं।
अस नरकके दुखनिकरते[4]नर निकर साके कत नहीं॥
पुन कहूं पुण्य प्रतापते तिन तापते निकसे जबी।

---

१ पलभरमें, २ चमड़ेकी सिकुड़न, ३ समूह, ४ दुःखसमूह से।

धरविविध वेषनसुग्ध वेखहि निजसरूपहिं हटकबी॥
विषवत विषमरस विष्योंकेजन तिहँविखे मनलायहैं
इहहेतु नर दुखकेत पाय न पाय हरके ध्याय हैं॥

दोहा।

तजे न नट नटभाव निज, भजे अनेकस्वरूप।
नटते नर शठ तज स्ववपु, भजे विविध निजरूप॥

श्लोकः।

तुङ्गं वेश्म सुताः सतामभिमताः संख्या-
तिगाः संपदः,।कल्याणी दयिता वयश्च
नवमित्यज्ञानमूढोजनः।मत्वाविश्वमन-
श्वरं निविशते संसारकारागृहे, संदृश्य
क्षणभंगुरं तदखिलं धन्यस्तु संन्यस्य-
ति॥ १२७॥

तोटक छंद।

बहुतुंग अगारकुमारमहाँ।नविचारपतिव्रतनारितहाँ
[3]पुरुहूतसमानविभूतघनी।नपुमानकहूंकरजातिगनी

१ विषयोंके. २ ऊंचे. ३ इन्द्रके समान.

जुमहाजनमाहिंमहाजनहैं।तिनकेमनवांछितजेधनहैं
बरतेममअग्रसमग्रबहें।भवमोंअब मोसमकौनअहे॥
जडजंतुइवें जउताकरके।गर्वेंअतिशै मतिको हर के॥
सबविश्व[1]अनश्वरमान[2]रते।परते[3]भवकूपगृहेनरते
ममतामयसंगलसंग जरे।बहूयोनिधरेंसुखशून्यचरें॥
जिनयासगरेभवकोमनम।मनकेक्षणक्षीणातज्योक्षणमें
बसकेबनमैंसतचेतनमें।तद्रूप भए जु इसे तनमें॥
सुरापित्रसभीजनताहि[4]जजें।तिहंनामभजे अघ[5] ओघभजे

दोहा।

देत दंड बहु दंडधर, जे गर्वंत धन पाय।
४जजे सुता विप्रीतिके, सहकुटुंब बिब पाय॥

श्लोकः।

यदा मेरुः श्रीमान्निपतति युगान्ताग्नि-
निहतः,समुद्राःशुष्यन्तिप्रचुरनिकरग्राह-
निलयाः।धरागच्छत्यन्तंधरणिधरपादै-
रपि धृता, शरीरे का वार्त्ता करिकलभ-
कर्णाग्रचपले॥ १२८॥

---

१ अविनाशी. २ रम गये. ३ संसारमें. ४ पूजते हैं. ५ पापोंके समूह-

गीया मालती छंद।

श्रीमतकनकगिरि दृढजबै सुप्रलयअगनिकर गिरपरे॥
मकरादि जंतु अनंतको घर [1]जलधि सुकहि तिहँकरे॥
जब शेषनाग शिरानकरकै धरत [2]अपि धरती जरे॥
[3]करिकरभके[4]करगाग्रवत[5]चल[6]कायकी तब क्यारर॥

दोहा।

हेमाद्री वारिधि धरा, रवि विधु विधिना ताहिं।
करे अंत अंतक सकल, अहं जंतु किनमाहिं॥४८॥

श्लोकः।

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं, तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः। शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते, जीवेवारितरंगचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्॥१२९॥

कवित्त।

शुभ [7]सतसंवत नरानकी प्रमाण आयु,

---

१ समुद्र. २ भी. ३ हाथीके बच्चेके. ४ कानके अग्र भाग के समान. ५ चंचल. ६ शरीरकी. ७ सौ वरस.

तास आधभाग नाश होय रैन सोय है ।
बालवृद्धमाहिं ताहि आधो भाग [1]बाधो आहि,
जाडयता अशक्यताकी खानि [2]बैस दोय है ॥
शेषकी अवधि जोऊ आधि व्याधिसंग सोऊ,
भ्रमणो विदेश होऊ सेवकादि खोय है ।
जीवनकी आयुमाहिं सुखको तो नाम नाहिं,
[3]तोयके तरंगके समान भंग होय है ॥ ४९ ॥

श्लोकः ।

कृशःकाणःखञ्जःश्रवणरहितःपुच्छविकलो, व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः। क्षुधाक्षामोजीर्णःपिठरककपालार्पितगलःशुनीमन्वेतिश्वाहतमपि च हन्त्येव मदनः ॥ १३० ॥

भुजंगप्रयात छंद ।

हहा मीचको नीचमारे[4] नंगा इदं श्वान[5] [6]श्वानीकु चाहे अलिंगा ॥
कृशा पिंग काणा कनीपुच्छगुच्छा । सवंपूं व्रणो ते भिगी सर्व त्वच्चा

1 नष्ट होजाता है. २ अवस्था. ३ जलके. ४ काम, ५ कुत्ता, ६ कुत्तीको,

कृंमासंख्यकेसंगसोंव्यावृतांगा। कटेंकीटघ्रौमक्षिकापुंजकाँगा॥
तृषाभूखसोंव्याकुलोजीरणांगा। गरेबीचपेटारकोपरघोघांगा ५१
इसे श्वान तेभीनहींकामबाचे। धनी ज्ञानकेचित्तमेंकिंनराचे
डरेएकका[1]मारितेमैनशूरा।[2]जटीदासकेपासतेभीमदूरा

सोरठा।

शिवभृत[3] शिवमय हेर, [4]मनमथ तास न मन मथे।
डरे दहे मत फेर, नाम अनंग अभाव है ॥५३॥

श्लोकः।

माने म्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थे
प्रयातेऽर्थिनि, क्षीणेबन्धुजनेगतपरिजने
नष्टेशनैर्यौवने।युक्तंकेवलमेतदेव सुधियां
यज्जह्नुकन्यापयःपूतग्रावागिरीन्द्रकन्दर-
दरीकुञ्जे निवासः क्वचित ॥ १३१ ॥

मनोज छंद।

दरशे जनजो निज मानमलीन। नित छीणपिखेधनलो भरतीन

1 शिवजीसे. 2 शिवजीके मस्तके. 3 शिवजीका दास, कामदेव.

अरथीअरथेफिरजातकदंब[1]। हतबंधुजनापि विनष्टकुटुम्ब।
निजनष्टयुवाजुस[2]नेसनजोय। इमिभ्रष्टसमाज सबी जबहोय
बुधिवाननकोंनजश्रेयनिदान। युक्तीकसुखेनअयंसुखखानि
जलदे[3]वनदीकरजोशुचिआहि। गिरिराजशिलाउतकंदरमाहिं
अथवावनकुंजनमैंबुधवंत। वसकेकतहूँसिमरेभगवंत५५

दोहा।

नष्ट भये भव भोग को, पुन न भजे जन [4]स्यान।
कहूँविविक्त[5] स्थानमें, बैठ करे हरि ध्यान ॥५६॥

श्लोकः।

प्रशान्तशास्त्रार्थविचारचापलं, निवृत्तनानारसवाक्यकौतुकम्। निरस्तनिःशेषविकल्पविप्लवं, प्रवेष्टुमन्विच्छति शंकरं मनः ॥ १३२ ॥

कवित्त।

विविध प्रकार वेद अर्थके संवेद[6]वारी,

---

१ समूह. २ धीरे धीरे. ३ गगांजी, का. ४ चतुर. ५ एकान्त स्थान में. ६ ज्ञान वाली।

चेतनामें चंचलाई सो निकाई हेत है ।
नानाविधि वाक्यनके कौतुकमें रस जोऊ,
सो विरस भयो जाहिं माहिं विलसत है ॥
भाँत भाँत सकल विकल्प प्रशांत जामें,
रजो तमो तेरे हित सतोके सहित है ।
ईश्वर की सेवहित ऐसो चित चाहिअत,
ऐसे चितहीमो [1]सत चित[2] विकसत है ॥५७॥

श्लोकः ।

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं, स्नेहो
न बन्धुषु म मन्मथजा विकाराः । संसर्ग-
दोषरहिता विजना वनान्ता, वैराग्यमास्ति
किमतः परमर्थनीयम् ॥१३३ ॥

कवित्त ।

हरमैं सनेह तर[3] जनम मरण डर,
उरमाहिं कीनो घर बधू में न राग[4] है ।
मनोभव जो विकार मन्द संसकार डार,

१ सत्यस्वरूप. २ चैतन्यस्वरूप. ३ परिपूर्ण. ४ प्रीति.

संगदोष दुःख टार वसैकांत बाग है ॥
या वैराग्य भए कहा होर त्याग रहा है,
हती सब चाहि जो वैराग्यते वैराग्य है।
हेतु परमारथ को उत्तम वैराग्यं ऐसो,
भाग बड़े भाग को अभाग ताँते भाग है ॥५८॥

श्लोकः॥

भोगे रोगभयं सुख क्षयभयं वित्ते नृपा-
लाद्भयं, माने हानिभयं जये रिपुभयं रूपे
जराया भयम्। शास्त्रे वादिभयम् गुणे
खलभयम् काये कृतान्ताद्भयम् सर्वं वस्तु
भयान्वितम् भुवि नृणां वैराग्यमेवाभ-
यम् ॥ १३४ ॥

कवित्त।

भोगनमों रोगभय सुखोंविषे [1]क्षयभय,
धनमध्य भय भूप चोरको रहत है।
दासमाहिं स्वामिभय जयमाँझ रिपुभय,

---

१ नाशका डर.

भय कुलबीच नीचनारीको महत है ॥
मानमाहिं हानिभय गुणोंमें खलन भय,
कायमें कृतांतभय भय सर्वगत है ।
निर्भय वैराग्य एक धरो नरो सविवेक,
गायो में अनेक अब थकी मोरी मति है ॥५९॥

दोहा।

शुभवैराग्य विवेक[1] बिब, करहिं बेग कल्पान ।
हृगादित्यवत हरत हैं, अन्धकार अज्ञान ॥६०॥

सोरठा।

[2]रजनीविन सित[3]चँद, निशा[2] असित[4] शशिहीनज्यों।
उभयसहित आनन्द, त्योंवैराग्य विवेक विद[5]॥६१॥

दोहा।

शत समस्त वैराग्यको, कह्यो भरत शतमाहिं ।
सत्यप्राप्तिहित बचन सत, धरो नरो उर ताहिं ॥६२॥

सोरठा।

बिन संग्रह सुविचार, पशू बद्ध ज्ञानी दुखी ।
पँच्छी पंखप्रकार, उभयसहित सुखगति लहित॥६३॥

१ ज्ञान. २ रात्रि. ३ फीका. ४ काली. ५ जानो.

दोहा।

[१]मुगधहुँके [२]उरउपलमांहिं, भरतबचन बट हेतु।
कहूँ [३]पुण्यखगयोगते, बसे लसे सुख देत ॥६४॥
लोष्टछापभाषा युक्ति, वज्र भरत के बैन।
सार सुमोच्छी पारखू, गहे सर्वदा चैन ॥६५॥
प्रकट विष्णुसम संस्कृत, भाषा हरिपाषाण[४]।
श्रद्धामान पुमानको, करत [५]उभय कल्याण ॥६६॥

सवैया।

तीरथानकिमांहिंसनानसमानकरे बहुदा नमहानमणीके
श्मशान मठान तरूनतरे इसथानकरे उत तीरनदीके ॥
मुख मौनधरे तज भौनचरे अर वेद ररे सुपढानतनीके।
गुणए ततवृंद बरात जनावरएकविराग विनासबफीके ॥

कवित्त।

दैवी गुण कवीगण औषधी समादि पुष्ट
तृष्णाताप मोहतम कामचोर हत है।

---

१ मूर्खों के. २ हृदय रूप पत्थर में. ३ पुण्यरूप पक्षी के संयोग से.
४ शालग्राम. शिला ५ दोनों.

मुदित विवेकी कामी दुःखी मूढ द्रेही वामी,
उदे धीत्रिया[१]मीमों कुसंग दिने गत है ॥
सकुचे [२]सरोजभोगी मोक्षसुधाके संयोगी,
श्याम श्वेत भोगी योगी मोबढ़े घटत है ।
दोषवेद माने नाहिं जनम न व्योम[३]माहिं,
[४]विधुवत विकसत निरवेद सत है ॥६८॥

दोहा।

अंक[५]बृंदको गुंदकर[६], बंद[७] छंदको कौन ।
तुटत युक्ति छंदार्थ जहँ, कवी सुधारो तौन॥६९॥
योगीजनके वचनको, भोगी भेद [८]अविंद ।
ईशकृपाबल यथामति, कह्यो सिंधुमों[९] बिंदु॥७०॥

कवित्त।

बसे शिवा[१०] वामे अंग लसे भूतजूथ संग,
[११]ग्रसे भंग शीश गंग ज्ञान तीन कालको ।
धेनुवाल[१२] वाहन सुघाल[१३]बाल भाल[१४] धरे,

---

१ बुद्धिरूप रात्रि में. २ कमलरूप भोगी. ३ आकाशमें. ४ चन्द्रके समान. ५ अक्षरोंके समुदायको. ६ जोड़कर. ७ प्रबन्ध. ८ नहीं जानते. ९ समुद्र में बिन्दु के समान. १० पार्वती ११ पिये. १२ वृषभ. १३ बालचन्द्रमा. १४ मस्तक में.

गरे व्याल रुंडमाल तरे सिंहखालको ॥
नाथन के नाथ हैं अनाथनके नाथ देव,
जाँके [१]पादपाथ माथ धरे हरे [२]कालको।
दयासिंधु [३]अलकाम कामरिपु सुखधाम,
हरद्यालकी [४]नमाम ऐसे [५]हर द्यालको ॥७१॥

सवैया।

सुखशांतस्वरूप[६]सवें[७]अहि ऊपरबारिजनाभसुरेशकिराई
सबविश्वअधारअकाशप्रकार[८]सुवारिदरंगशुभांग सत्राई
वरश्रीवरलोचननीरजसोजिँहचीरतयोगिसमाधिलगाई
भंवत्रासंकिनाशकिहेतनमोतिन लोकपतीइकताँहरितांई

छप्पय छंद।

उचित भरतवैराग्य इनहिं इन्द्रादि न पावहिं।
विषयभोग संयोग विषे सुर जन्म बितावहिं ॥
प्रकटे जो इक वार पुण्य सब बहु जन्माको।
यहि वैराग्यहि भाग ताँ हिंडत भाग जनाको॥७२
भव हरे खेद निरवेद तिहँ करे शांत उर भ्रांति हत।

२ चरणोदक. २ मृत्युको. ३ पूर्णकाम. ४ नमस्कार. ५ दयालु शङ्करको ६ शयन करते हैं. ७ शेषपर. ८ मेघ के समान.

जो करे निरादर ताहिको कहू न सुख आदर लहत॥

दोहा ।

रविप्रभाव [1]त्र्योदशो यह, हरहि तिमिर उरभ्रांति ।
शांतिहेतु स्वजनानको, भयो आप अब शांत॥७४॥

सोरठा ।

भरतशतकवैराग्य, प्रारम्भ्यो द्रुहिणीपुरे ।
समं पवित्र प्रयाग, [2]सुधासरे [3]इतिश्री भयो ॥७५॥
शशिवसुवसुरस शशिवती, दरशासूके माहिं ।
सम्पूरणसम्पूरणम्, भयो ग्रन्थ शुभ आहि ॥७६॥

समाप्त

१ तेरहवां अध्याय' २ अमृतसर में. ३ समाप्त.

❀ श्रीगणेशायनमः ❀

अथ स्तोत्राणि ।

तत्र अमृतसरः स्तोत्रम् ।

श्रीनानकाख्यगुरुणा रचितं पठन्ति ग्रन्थं जना युवतयोऽपि च तेन यत्र । ब्रह्मावबोधगतशोकतया वसन्ति श्रीरामदासनगरं भज तत्सुबुद्धे ॥ १॥ संशोभतेऽमृतसरः खलु यस्य मध्ये नाम्ना ततोऽमृतसरो जगति प्रसिद्धम् । यस्यामृतं हरति जन्म न नाकनिष्ठं श्रीराम० ॥२॥ यत्रामृतस्य सरसो हरिमन्दिरं वै मध्येविभाति कनकेन कृतं विचित्रैः । नानाविधैर्मणिगणैर्घटितं च दिव्यं श्रीराम० ॥ ३ ॥ आस्ते हरिः सकलपापहरो हि यस्मिन् साक्षात्स्वमन्दिर उदारतराच्छकान्तौ । श्रीग्रन्थनामधृगनन्तगृहीतरूपः श्रीराम० ॥४॥ गायन्ति गानकुशलाः सततं हि तत्र वैराग्यबोधजनकं गुरुशब्दमेव । शान्तिं व्रजन्ति हरिमन्दिर एव तेन श्रीराम०॥५॥ श्वेताश्मसंघटितदीर्घविशालसेतौ ध्यायन्ति केचिदपरे

विमशन्ति यत्र। पृच्छन्ति केचिदितरे प्रवदन्ति तज्ज्ञाः श्रीराम० ॥ ६ ॥ सेतुस्थभक्तजनपादरजोभिषेकान्नश्यन्ति कोटिभवसंचितदुष्कृतानि। दुःखं च यत्र सकलानि हरिप्रसादत् श्रीराम० ॥७॥ संभाति हाटकमयी निकटे पताका कान्त्या च भानुसदृशी हरिमन्दिरस्य। दिव्यातिसुन्दरतनुःसुखदा च यत्र श्रीराम० ॥८॥ संभात्यकालपुरुषस्य महच्च यत्र दिव्यं सुमन्दिरमनेकसुशिष्यजुष्टम्। मन्त्रोपदेशकुशलैः परिरक्षितं च श्रीराम० ॥९॥ चौकीति नाम विमलो गुरुशिष्यसंघः सायंपरिक्रमविधौ सततं प्रवृत्तः संशोभते हि गुरुशब्दमुखश्च यत्र श्रीराम० ॥१०॥ संराजतेऽमृतसरोवरतीर्थतीरे देदीप्यमानवरमन्दिरदिव्यपंक्तिः। नानाकृतिश्च परितोऽतिथयो हि यत्र श्रीराम० ॥११॥ ऐरावतीवरनदीसलिलं पवित्रं यत्रामृतस्य झटिति प्रविशद्धि कुण्डम्। रूपं स्वनाम च विहाय भवेत्सुधांशु श्रीराम० ॥१२॥ ऐरावतीसलिलसंगमदेशपार्श्वे आस्ते भवो भवहरो वटवृक्षछायाम्। पाश्रित्य दीर्घसघनां वरदश्च यत्र श्रीराम० ॥१३॥

तिष्ठन्ति भीमनिकटे सततं हि यत्रोदासीनवर्य्यमुनयः
सजटा विभूत्या । संशोभमानतनुकान्तिधरा महान्तः
श्रीराम० ॥१४॥ कुष्ठावृतं स्वपतिमीशधिया भजन्ती
संस्थाप्य योषिदशनाय गता गृहीत्वा । आगत्य सु-
न्दरतनुं स्वपतिं बिलोक्यापृच्छत्पतिं च भिषजा खलु
केन दिव्यः ॥१५॥ देहः कृतो हि भवतां वरमौषधं
किं सर्वं वदस्व कृपयेति शृणुष्व भद्रे ।भाग्येन लब्धमि-
दमौषधमव नान्यत्काकःकुपन्नयुतएव बलिष्ठकाकैः १६
संपीडितोऽत्र पतितः सलिले सुपत्रो जातः क्षणा-
दिति विलोक्य मयाऽत्र दिव्ये । स्नातं जले सकल-
रोगविहीनदिव्यो देहोममाभवदतोऽसृतमेवाविद्धि १७
नान्योऽत्र कश्चन समागत एव वैद्यः सत्यं ब्रवीमि
वचनं कुरु चात्र भक्तिम् । यत्रेत्थमास पुरुषस्य
कथा स्वनार्य्या श्रीराम० ॥ १८ ॥ वासिष्ठभागव-
तभारतमेव नित्यं शृण्वन्ति केचिदपरे प्रतिबोधयन्ति ।
पीयूषकुण्डनिकटे सुधियश्च यत्र श्रीराम० ॥१९॥
स्नात्वा सुधासरसि विष्णुशिवादिपूजां कुर्वन्ति केचि
दितरे मनसो निरोधम् । स्तोत्राणि पावनतमानि ह-

न्ति यत्र श्रीराम० ॥२०॥ रात्रौ सदोऽमृतसरोवरतीर्थतीरे कृत्वासदा हि विमृशन्ति विवेकनिष्ठाः किं ब्रह्म का प्रकृतिरात्मवपुश्च कीदृक् पृच्छन्ति कश्चिदिति केऽपि वदन्ति सन्तः ॥२१॥ सत्यादिचिह्नमिति केऽपि वदन्ति तज्ज्ञा ब्रह्मास्ति हेतुरखिले हि विकारमात्रे एवं च केचन वदन्ति महानुभावा देशादिभिः परिमितं न यदेव तद्धि ॥२२॥ मायां त्विति श्रुतिबलात्प्रकृतिं च मायां केचिद्वदन्ति कुशला अपरे गुणानाम् । साम्यस्थितिं प्रकृतिमेव वदन्ति धीराः शक्तिं परस्य पुरुषस्य वदन्ति चान्ये ॥२३॥ आभासमेव तु चितः प्रवदन्ति जीवं केचित्परे सुमनसः प्रतिबिम्बमाहुः । कूटस्थलिङ्गतनुचित्प्रतिबिम्बसंघं केचिद्वदन्त्यसुधृतेरपरे वदन्ति ॥२४॥ इत्यादिकं बहुविधं खलु यत्र कुत्र मित्रैः सुतैः स्वजनकैश्च रमाश्रमस्थैः । वाक्यान्नरा सुमनसः प्रवदन्ति यत्र श्रीरा०॥२५॥ स्तोत्रं पठन्ति य इदं सततं विशुद्धाः श्रद्धां विधाय नियमाद्गुरुभक्तियुक्ताः रागादिदोषरहिताः पुरुषाः सदैव ते श्रीसुधासरसि वासमतो

लभन्ते ॥२६॥ इति श्रीमदुदासीनवर्य्यगङ्गारामशि-
ष्येणोदासीनात्मस्वरूपेण विरचितं श्रीमदमृतसरः-
स्तोत्रं समाप्तम् ॥ २७॥

अथ ज्ञानदीपाख्यं स्तोत्रम् ।

ॐ परीक्षा विधाय प्रमाणैर्विरक्तो न मे स्याद्धिना
शीति निष्ठा प्रयातः । गुरुं श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं च गत्वा
यदाप्नोति तत्त्वं तदेवाहमस्मि ॥१॥ स विद्वान्प्रशा-
न्तं विनयँ प्रपन्नँ निरीक्ष्य प्रसन्नः कृपाधीनचित्तः । अ-
धिष्ठानमस्य प्रपंचस्य यद्धि वदेन्नित्यशुद्धं तदेवा०।२।
अवस्थासु सर्वासु भात्येकरूपं स्वभास्यैर्न भातीन्द्रिया-
द्यैः सदैव । घटाद्यैर्यथाभानुरात्मस्वरूपं परं बोधरूपं
तदेवा०॥३॥निषिध्याखिलं दृश्यजातं निषेध्यं निषे
धावसानं स्वतोभासमानम् । मनोवागतीतं परानन्द-
रूपं परं ज्योतिराद्यं तदेवा०॥४॥ अहन्तां परित्यज्य
देहे ह्यनित्ये यथास्वप्नदृष्टे प्रबोधं प्रयाति । तथा ता
परित्यज्य जाग्रच्छरीरे भवेद्ब्रह्म यत्नात्तदेवा० ॥५॥

सुसुप्तौ प्रशान्तिं यदास्य प्रयाति न बन्धो न मोक्षोऽनुभूत्याऽस्ति यस्य । न जन्मापि मृत्युर्न पुण्यं न पापं समाधिस्तदन्यस्तदेवा० ६ ॥ श्रुतं ब्रह्म सृष्टेः पुरा भेदशून्यं सदेकं यथा वर्तमानेऽपि काले । तथैवास्ति मोक्षावसानं न यस्मिन् विभेदोऽस्ति किंचित्तदेवा० ॥७॥ यदज्ञानतो दुःखराशौ निमज्जेत् सुखाब्धौ च यस्य प्रबोधेन सद्यः । भवेत्कृत्य शून्योऽथ यस्यानुभूत्या सदाशुद्धरूपं तदेवा० ॥८॥ इहामुत्रभोगाद्विरक्तः परात्मानुसंधाननिष्ठः पुमाञ्छुद्धबुद्धिः । तमोहीनचक्षुः स्तवं ज्ञानदीपं पठेद्यो न भूयो वसेन्मातृकुक्षौ ॥ ९ ॥ इति श्रीमदुदासीनवर्य्यगंगारामशिष्येणोदासीनात्मस्वरूपेण विरचितं ज्ञानदीपाख्यं स्तोत्रं समाप्तम् ॥शुभमस्तु सर्वजगताम् ।

अथ श्रीकृष्णाष्टकम् ।

आनन्दलेशमनुगत्य भवन्ति यस्य ब्रह्मादयोऽपि सुखिनः सकला हि देवाः । आनन्दसिन्धुमखिलं त्वनुभूय वाक्यात्कृष्णं भजामि चितिरूपमजं तमे-

कम् ॥१॥ अर्केन्दुवह्निवचने सततं प्रशान्ते सर्वो
जनो व्यवहृतिं कुरुतेऽथ येन । सुप्तो विलोपरहितं
मनसि प्रलुप्ते कृष्णं० ॥२॥ यं ज्योतिषां सुरगणा
विदुरप्रमेयं दीपं मनोऽपि मनसो नयनस्य नेत्रम् ।
श्रोत्रस्य यः श्रवणमेव भवेत्परात्मा कृष्णं० ॥
॥३॥ यस्याप्रबोधवशतो निरयप्रवेशं मूढा व्रजन्ति
बहुयोनिषु चापि दुःखम् । बोधेन यस्य लभते न
च दुःखगन्धं कृष्णं० ॥ ४ ॥ प्राणेन जीवति नरो
नहि कश्चिदेव नापानतोऽपि सततं त्वितरेण येन ।
सर्वोऽपि जीवति जनः श्रुतिसिद्धमीशं कृष्णं०॥५॥
नादिष्ठमेव विदुषामनुभूतिमानात् प्रत्यक्तया स्फुर-
णतो भुवनप्रकाशात् । दूरात्सुदूरतममेव बहिर्मु-
खानां कृष्णं० ॥६॥ पद्मोद्भवं स्वतनयं प्रहिणो-
ति वेदान् या यस्य धावति शयेन च मृत्युरेषः ।
अग्निर्भयेन तपति द्युमणिश्च तस्य कृष्णं० ॥७॥
यो वेत्ति वेद्यमखिलं न च वेदितान्यो यस्यास्ति
कश्चिदपि वेदकदेव यश्च । यं वेदवेद्य इति वेद

विदो वदन्ति कृ० ॥८॥ बोधादिमं पठति योऽमल-
धीः सदैव भक्त्या स्तवं सुखतमे प्रणिधाय चित्तम् ।
कृष्णे परे बिमलबोधघने प्रशान्ते बन्धं विधूय
पुरुषो विशते सकृष्णम् ॥९॥ इति श्रीमदुदासीन-
वर्य्यगंगारामशिष्येणोदासीनात्मस्वरूपेण विरचितं
श्रीकृष्णाष्टकं समाप्तम् ॥

अथ श्रीरामाष्टकम् ।

यस्मादुदेति निखिलं स्थिरजंगमं यो वाचा धियां
च विषयो न भवेत्सदैव । यस्मिन्स्थितो न लभते
पुनरेव जन्म तं राममद्वयमनन्तमनादिमीडे ॥१॥
कोशान् विहाय सकलान्परिशेषमात्रं जानन्ति यं
विमलबोधदृशा महान्तः । ब्रह्मेति वेदवचसा गुरु
देवभक्तास्तं राम० ॥ २ ॥ त्यक्त्वा तनुं यममलं
प्रविशन्ति तज्ज्ञा ध्यायन्ति यं शिवविरञ्चिमु-
खाश्च देवाः । पश्यन्ति योगनिरता विजितेन्द्रिय
यं तं राम० ॥ ३ ॥ तावत्त्वलीकमपि सत्यतया
विभात्याधिष्ठानमस्य विदितं न भवेद्धि यावत् ।

बोधेन यस्य न विभाति तथा खनैल्यं तं राम० ॥४॥ भासार्कसोमचपलानलतारकाणि लोहादितप्तमनलेन तथा विभांति । यस्यानुभानमुपयांति मनोवचासि तं राम० ॥ ५ ॥ सूर्येंदुरूपनयने चरणौ च भूमिः प्राणोऽथ यस्य पवनो हृदयं च विश्वम् मूर्धानलो भवति वाग्विवृताश्च वेदास्तं राम० ॥ ६ ॥ सृष्ट्वा प्रविश्य तदनु स्वयमेव सच्चत्यच्चाभवच्च ऋषिभिः सततं विमृग्यः । लब्ध्वा रसं यममलं सुखमाप्नुवंति तं राम० ॥७॥ यश्चेतनश्चितिमतां मति लोचनानां नित्यश्च योगगणशब्दमुखब्रवाणाम् । सत्ताप्रदो न तु सतामनुभूतिसिद्धस्तं राम० ॥८॥ ज्ञानात्पुमान् विमलधीर्विरतिं प्रयातो जन्यात् स्वकर्मफलतो ध्रुवनाशभाजः । स्तोत्रं पठेद्य इह राघवभक्तियुक्तः पातुं न वै स लभते जननीपयांसि ॥ ९ ॥ इति श्रीमदुदासीनवर्य्यगङ्गारामशिष्येणोदासीनात्मस्वरूपेण विरचितं रामाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

अथ ब्रह्मनिरूपणाख्यं स्तोत्रम् ।

आराध्य राममखिलेश्वरमादिदेवं प्राप्येतिपृच्छति गुरुं किमिदं च कोऽहम् । तं शिष्यमाह कृपयेति गुरुर्महात्मा ब्रह्मेदमस्ति सकलं त्वमहं तथैव ॥१॥ अग्निर्यथा हि भुवनं गत एक आस्ते नानाकृतिः स्थिरचरं पुरुषस्तथातः । जुष्टां सदेति मुनिभिर्धिषणां गृहाण ब्रह्मे० ॥२॥ चन्द्रो यथा बहुविधो जलपात्रभेदादेकस्तथा मतिषु भाति परः प्रविष्टः । तेषां भिदास्ति जगतो न सदेति विद्धि ब्रह्मे० ॥३॥ सर्वासु दिक्षु च विदिक्षु कणाः प्रवृत्ता वह्नेर्यथापि न भवन्ति ततो विभिन्नाः । जीवास्तथात्मन इदं च ततोऽबबुद्धं ब्रह्मे० ॥४॥ द्रष्टास्ति नान्य इत आत्मन एष देवः सर्वेषु तिष्ठति चिदात्मतया विभातः । आत्मैव सर्वमिति वेदवचोऽस्ति तस्माद्ब्रह्मे० ॥५। आत्मैव ते यमयिता वपुरस्य सर्वं शास्ता प्रविश्य सकलस्य जनस्य यो हि । इद्धोंऽशुमांस्तपति येन तदेव शुद्धं ब्रह्मे० ॥६॥ एक

यमूचुरमलं बहुधा स्वबुद्धया प्राज्ञाश्चतुर्मुखयमेन्द्र हुताशरूपम् । भेद प्रकल्प्य तत एव सदेति पश्यं ब्रह्मे० ॥७॥ नारायणात्मकमिदं जगदाह वेदो जातं यतो भवति तत्र ततो विभिन्नम् । तोयात्तरङ्ग-मिव वेद्मि सदेति तस्माद्ब्रह्मे० ॥८॥ ज्ञानादिदं पठति यः खलु शुद्धबुद्धिः स्तोत्रं मनः परतरे प्रणि-धाय नित्यम् ज्ञात्वा परात्परतरं परिमुच्य बन्धं सद्यः पुमान्भवति सोऽथ परात्मरूपः ॥९॥ इति श्रीमदुदासीनवर्य्यगंगारामशिष्येणोदासीनात्मस्व-रूपेण विरचितमखिलब्रह्मनिरूपणं नाम स्तोत्रं समाप्तम् ॥

पुस्तक मिलने का ठिकानाः—

रघुनाथदास पुरुषोत्तमदास अग्रवाल,

चूना कंकड़ मथुरा,

विचार चन्द्रोदय।

षोडशकलायुक्त।

यह वेदान्त ग्रन्थ ब्रह्मनिष्ठ पण्डित पीताम्बरजी ने स्वतंत्र रचना किया है, आदि से अन्त-पर्यन्त प्रश्नोत्तर रूप है, आरम्भ में अकारादि अनुक्रमणिका और अन्त की षोडशवी कला में लघु-वेदान्त कोष है और प्रत्येक कला के आरम्भ में उसका सारांश पद्य में दिया है, जिसके कण्ठ करने से कला का रहस्य सहज ही स्मरण रहता है।

क़ीमत २) रु०

श्री सुन्दर विलास।

सटीका

यह ग्रन्थ दादूपन्थी साधु महात्मा श्री सुन्दरदासजी का रचा हुआ है, इसकी विपर्यय अङ्क नामक टीका ब्रह्मनिष्ठ पण्डित श्री पीताम्बरजी ने बहुत उत्तमता पूर्वक करी है, इसमें ज्ञान समुद्र और सुन्दर काव्य भी सम्मिलित हैं, इस कारण यह ग्रन्थ वेदान्त के पद्य-ग्रन्थों में सर्वोपरि हो गया है। कीमत २।) रु०

मिलने का पता---

रघुनाथदास पुरुषोत्तमदास अग्रवाल,

चूना कंकड़, मथुरा।

मुद्रकः—

पं०—पुरुषोत्तमदास मुरलीधर शर्मा, 'हरीहर मशीन प्रेस,, मथुरा।